Con. 3. VII.4.48
350

अंक 7
संख्या 4

सोमवार
8 नवम्बर
सन् 1948 ई.

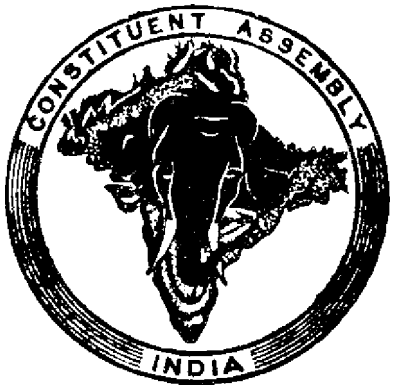

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर..... 257
2. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव–(*जारी*)..... 257

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, ता. 8 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई; उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्षपद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की एवं रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

सर एच.पी. मोदी (बम्बई: जनरल)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** (डा. एच.सी. मुकर्जी): सभा का यह निर्णय रहा है कि हम लोग वाद-विवाद आज बन्द कर देंगे। मेरी सूची में साठ नाम हैं और यह स्पष्ट है कि मेरे लिए यह असम्भव है कि मैं सबको बोलने का अवसर प्रदान...।

***अनेक माननीय सदस्य:** हम आपकी आवाज नहीं सुन पाते हैं श्रीमान्! माइक (*ध्वनि प्रसारक यंत्र*) काम नहीं कर रहा है।

***उपाध्यक्ष:** निश्चय ही मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि मैं प्रत्येक सदस्य को, जो बोलने की इच्छा रखते हैं, बोलने का अवसर दूं। इसलिये मैंने निश्चय किया है कि अल्पसंख्यक वर्गों के सदस्यों को पहले बोलने का अवसर दिया जाये। श्री महबूबअली बेग, आप बोलिए।

***श्री महबूबअली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर द्वारा किया हुआ विवेचन एवं पर्यालोचन बहुत ही स्पष्ट, पाण्डित्यपूर्ण,

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री महबूबअली बेग साहब]

शिक्षाप्रद एवं व्याख्यात्मक रहा है। हो सकता है कि हम उनके विचारों से सहमत न हों, किन्तु सभी के सम्मुख मसौदे के विचारार्थ प्रस्ताव उपस्थित करते हुए आपने जो अनुपम भाषण दिया है, उसकी प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। मसौदे में जो शासन-प्रणाली रखी गई है या विधान-पद्धति रखी गई है, इन दोनों से ही मैं असहमत हूं। डा. अम्बेडकर ने इनके औचित्य के सम्बन्ध में जो कारण बताये हैं, उनसे भी सहमत होने में मैं असमर्थ हूं।

पहले मैं शासन पद्धति को ही लेता हूं। डा. अम्बेडकर का मन यह है कि ब्रिटेन का परिषदात्मक (पार्लियामेंटरी) अधिशासी-मण्डल अमेरिका की अपरिषदात्मक अधिशासी व्यवस्था से अधिक अच्छा है, क्योंकि ब्रिटेन की व्यवस्था दायित्वपूर्ण अधिक है, यद्यपि उसमें स्थैर्य कम है, पर अमेरिकन व्यवस्था में स्थिरता अधिक है पर दायित्व कम है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि परिषदात्मक शासन-व्यवस्था के गुणों को तो बहुत बढ़ाकर उसके दोषों को बहुत घटाकर उन्होंने बताया है। यह एक सर्वविदित तथ्य है और इसे अपने अनुभवों के आधार पर हम सभी जानते हैं कि गत दो दशाब्दियों से हम जिस दायित्वपूर्ण अधिशासी व्यवस्था के अधीन काम करते आ रहे हैं, उसने इस सच्चाई की ओर सद ही हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल का अस्तित्व अपनी ही पार्टी के विरोधी दलों की दया पर निर्भर करता है। जो कार्यक्रम अधिशासी वर्ग के सम्मुख रहता है, उसे पूरा करने का उसे समय ही नहीं रहता, क्योंकि उस प्रणाली में यह आवश्यक नहीं है कि अधिशासी वर्ग निश्चित काल तक पदासीन रहा आये। अधिशासी वर्ग को सदा इस बात का भय बना रहता है कि अविश्वास-प्रस्ताव द्वारा वह कहीं हटा न दिया जाये। भ्रष्टाचार की जड़ इसी बात से तो शुरू होती है। पार्टी का भ्रष्टाचारी—घूसखोर व्यक्ति निर्वाचकों द्वारा हटाया नहीं जा सकता, न तो वर्तमान विधान के अनुसार और न प्रस्तावित विधान के ही अनुसार। मंत्री को या मंत्रियों को सदा इस बात के लिए सावधान रहना पड़ता है कि दल के विभिन्न लोगों को उनकी उचित अथवा अनुचित सभी मांगों को पूरा करके सन्तुष्ट रखा जाये। श्रीमान्, यही राय उस कमीशन की—साइमन-एटिली कमीशन की—भी है, जो कुछ दिनों पहले भारत भेजा गया था। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह साफ-साफ कहा था कि मंत्रिमण्डल विधान-मण्डल को सन्तुष्ट रखने में, राजी रखने

में ही इतना व्यस्त रहता है कि शासन-व्यवस्था को देखने का अथवा अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का उसको मुश्किल से समय मिलता है। यह दोष एक गम्भीर दोष है। इसके अलावा पार्टी के कई सदस्यों को मैंने यह कहते सुना है—दल का प्रतोद हमें किया जा चुका है, अतः ''हम अपने विवेक के अनुसार राय दे नहीं सकते। भगवान ही इस दल-प्रथा से हमारी रक्षा करें।'' यही राय अनेक सच्चे विधान-मण्डल के सदस्यों ने प्रकट की है। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, जैसा मैंने कहा है, इसमें स्थिरता है ही नहीं।

परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल के विरुद्ध तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं कि, वह यह है कि देश के विभिन्न सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व यह नहीं कर सकता। इस व्यवस्था में दोष इतने अधिक हैं कि मैं तो एक स्थिर अधिशासन को—एक ऐसे अधिशासन को, जिसे यह भय न हो कि वह दूसरे ही दिन गद्दी से हटा दिया जायेगा, क्योंकि वह अपनी पार्टी के भ्रष्टाचारी समर्थकों को सन्तुष्ट नहीं रख सका है—अधिक पसन्द करूंगा। यह सच है कि प्रजातंत्रीय अधिशासन में मंत्रिमंडल अवश्य ही दायित्वपूर्ण होना चाहिए। पर आइये, हम इस बात पर विचार करें कि आया ऐसी भी कोई शासन-व्यवस्था है, जिसमें दायित्व और स्थैर्य दोनों ही बातें वर्तमान हों। निस्सन्देह यह सच है कि अमेरिकन शासन-व्यवस्था में दायित्व कम है और स्थिरता अधिक। किन्तु यदि आप एक अन्य वर्तमान शासन-प्रणाली—स्विटजरलैंड की शासन-प्रणाली को देखें, जिसमें निर्वाचित विधान-मण्डल अधिशासी-मण्डल का निर्वाचन करती है—तो आप पायेंगे कि उसमें दायित्व पर काफी जोर दिया गया है। वहां विधान-मण्डल अधिशासी-मण्डल को चुन देता है और फिर अपनी योजनाओं को चार वर्ष के अन्दर संतोषपूर्ण ढंग से कार्यान्वित करने का काम अधिशासी-मण्डल पर छोड़ देता है। वहां के अधिशासी-मण्डल को विधान-मण्डल का निर्णय मानना ही पड़ता है, जो कि अमेरिका के परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल के लिये आवश्यक नहीं है। इसलिए यदि स्थैर्य एवं दायित्व दोनों ही बातें चाहते हैं, तो इसके लिए स्विस-प्रणाली ज्यादा अच्छी है।

अब, श्रीमान् मैं विधान-पद्धति की ओर आता हूं। जो विधान-पद्धति इस मसौदे में रखी गई है, उससे सहमत होने में मैं असमर्थ हूं। लोगों का यह ख्याल दिखाई देता है कि केन्द्र बहुत सशक्त होना चाहिए और जब तक केन्द्र स्वयं बहुत सशक्त नही होगा, प्रान्त केन्द्र के सशक्त होने में सदा बाधक रहेंगे; यह विचार गलत हैं। यदि प्रान्तों को स्वशासन का अधिकार दे दिया जाता है, तो इससे यह जरूरी

[श्री महबूबअली बेग साहब]

नहीं है कि केन्द्र कमजोर हो ही जायेगा। किन्तु हम यहां क्या देखते हैं? मेरा मत तो यह है कि इस दशा में प्रान्तों का महत्त्व वही रह जायेगा जो एक जिला-बोडै को प्राप्त है। अनुच्छेद 275 को लीजिए। इसके अनुसार सद्यस्कृत्यता की स्थिति में केन्द्र सभी अधिकारों को स्वयं अपने हाथ में ले सकता है। खण्ड 226, 227 तथा 229 को लीजिए। इनके अनुसार केन्द्र प्रान्तों के लिए सभी विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकता है। और फिर आप लम्बी संघीय सूची एवं समवर्ती सूची को देखिए। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि ऐसी केन्द्रीय सरकार के लिए, जो कि इकाइयों के निर्णयों को उलटना चाहती है और शासन की संघीय व्यवस्था को एकात्मक व्यवस्था में परिणत करना चाहती है, यह सब करना आसान है। यहां इस बात की पूरी आशंका है कि इस प्रकार का अधिशासन सर्वसत्ताग्राही और सर्वेसर्वा बन जायेगा। जिस प्रकार का विधान मसौदे में रखा गया है, उससे इसी बात की आशंका होती है। इस सिलसिले में आप मूलाधिकारों को देखिये, जो मसौदे में रखे गये हैं क्या वस्तुतः उन्हें मूलाधिकार कहा जा सकता है? मूलाधिकार तो वे अधिकार होते हैं, जो बुनियादी किस्म के हों और जिनमें बहुत ही कठिन स्थिति में परितर्वन किया जा सके एवं साधारण स्थिति में जो सदा अपरिवर्तनीय रहें। किन्तु आप यहां क्या पाते हैं? इन मूलाधिकारों को अनेक प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया है और इनके सम्बन्ध में व्यापक अपवाद रख दिये गये हैं। जिस अध्याय में मूलाधिकारों की चर्चा है, उनमें थोड़ी गड़बड़ी भी है। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि बजाय इसके कि इस बात का फैसला सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ा जाये कि हुकूमत कतिपय विशेष परिस्थितियों में मूलाधिकारों का उल्लंघन कर सकती है या नहीं, मसौदे में ही ऐसी व्यवस्था रख दी गई है। मसौदे में विधान के स्वरूप के सम्बन्ध में जो व्यवस्थाएं हैं, उनमें कहा गया है कि विधान लचीला ही होना चाहिए।

ससम्मान डा. अम्बेडकर को मैं बताना चाहता हूं कि अतिविधिता और अपरिवर्तनशीलता ही तो लिपिबद्ध विधान के प्राण हैं, जिनके सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर का मत है कि उनसे बचना ही चाहिए। ब्रिटिश विधान की तरह हमारा विधान तो अलिखित रूप में है नहीं। ब्रिटिश विधान के सम्बन्ध में तो यह बात है कि इतिहास ने कालक्रम से उसे यह रूप दे दिया है। वहां का विधान अलिखित है और वह ब्रिटेन वासियों की अपनी विशेष प्रवृत्ति के लिये सर्वथा

उपयुक्त रहा है, जिससे कि वह बिना किसी लिपिबद्ध विधान के ही अपना काम चला लेते हैं। ब्रिटेन की विचित्र परिषदात्मक प्रजातंत्रीय व्यवस्था भी वहां की हुकूमत के सर्वथा उपयुक्त रही है। अपरिवर्तनशीलता और अतिविधिता यही दोनों, जिसकी कि डा. अम्बेडकर शिकायत कर रहे है, लिपिबद्ध विधान की आवश्यक एवं अपरिहार्य विशेषताएं हैं। हम नहीं चाहते हैं कि विधान उतना लचीला हो कि कोई भी अधिशासन मूलाधिकारों का भी जैसा चाहे उल्लंघन करे। इन मूलाधिकारों को लिपिबद्ध रूप देना ही व्यर्थ है, अगर इतने प्रतिबंधों और अपवादों से इन्हें बांध दिया जाता है। इन मूलाधिकारों को वही अनुच्छेद व्यर्थ भी कर देता है, जिसमें कि वे दिए हुए हैं। अनुच्छेद 13 में ही मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''इस अनुच्छेद की किसी बात से वर्तमान कानून के प्रवर्त्तन पर किसी भी तरह प्रभाव न पड़ेगा''। आप जानते हैं कि वर्तमान विधियां कितनी प्रतिक्रियाशील हैं। अवश्य ही अनुच्छेद 8 में कहा गया है कि ऐसे सभी कानून, जो मूलाधिकारों से असंगत हैं, प्रभावशून्य हो जायेंगे। किन्तु इसके प्रतिकूल अनुच्छेद 13 में यह कहा जाता है कि सभी वर्तमान कानून मूलाधिकारों के प्रतिकूल होते हुए भी प्रभावी बने रहेंगे। यहां न केवल परस्पर विरोध ही है, बल्कि अर्थभ्रम भी है। अगर अनुच्छेद 8 में उन कानूनों की तथा उनकी धाराओं की एक सूची दे दी जाती, जो इसके अनुसार प्रभावशून्य कर दिये गये हैं, तब तो इसका कुछ अर्थ होता। किन्तु अनुच्छेद से इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। इस अवस्था में, श्रीमान्, ये अधिकार मेरी समझ से तो मूलाधिकार हैं ही नहीं।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक बात कहना मेरे लिए नितान्त आवश्यक है। मसौदे में कहीं भी कोई ऐसी व्यवस्था नहीं रखी गई है, जिसके द्वारा लोगों के जाती कानून (Personal Law) की रक्षा हो सके। आप जानते हैं, श्रीमान्, कि हिन्दुस्तान में कई सम्प्रदाय ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में उनका अपना धर्मगत जाती कानून लागू होता है। जाती कानून के सम्बन्ध में भी कानून बनाया जा सकता है, किन्तु यह बात इस दावे के खिलाफ होगी कि यह अधिशासन एक असाम्प्रदायिक अधिशासन होगा और वह नागरिकों के धार्मिक अधिकारों के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

अब संरक्षण के सम्बन्ध में एक बात कहूंगा। श्रीमान्! मेरे कुछ मुस्लिम बन्धुओं में और खासकर मि. करीमुद्दीन ने यह कहा है कि अपने सम्प्रदाय के लिए वह

[श्री महबूबअली बेग साहब]

संरक्षण नहीं चाहते। किन्तु जब मैंने उनसे इस सम्बन्ध में बात की, तो उन्होंने साफ-साफ यह कहा है कि जब पृथक निर्वाचन न रह जायेगा, तो जो लोग भी विधान-मण्डलों में आयेंगे उनको बहुसंख्यक सम्प्रदाय ही मनोनीत करेगा और ऐसी हालत में ऐसा मुस्लिम उम्मीदवार सम्भवतः चुना ही न जा सकेगा, जो मुसलमानों का वास्तविक प्रतिनिधि हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वह इसी कारण से संरक्षण नहीं चाहते हैं। अगर हम ऐसा कोई रास्ता निकाल सकें, जिससे कि निर्वाचित मुस्लिम सदस्य अपने सम्प्रदाय का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व कर सके, तो फिर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में यदि ऐसा कोई उपाय—और उदाहरण के लिये यह उपाय है कि निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर हो—अधिकारारूढ़ दल निकाल सके या वह लोग निकाल सकें, जो इस विधान के निर्माण के जिम्मेदार हैं, तो उससे बड़ा ही काम हो। यदि ऐसा कोई उपाय नहीं रखा जाता, पृथक निर्वाचन नहीं रखा जाता, तो संरक्षण के हटाने की जो बात अल्पसंख्यक-उपसमिति में तय पाई गई है, उसका समर्थन करना, मैं समझता हूं, ऐसा कार्य न होगा, जो मेरे सम्प्रदाय के मत के अनुकूल हो।

अतः, श्रीमान्, कुल मिलाकर मेरा यही मत है कि विधान संतोषप्रद नहीं है। प्रस्तुत विधान से इस बात की बिल्कुल सम्भावना है कि इसकी शासन व्यवस्था तानाशाही पैदा करे या यह सर्वेसर्वा बन जाये और नागरिकों के तथा अल्पसंख्यकों के बहुमूल्य अधिकारों को कुचल दें।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्त-प्रान्तः मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, विधान पर अपना मत व्यक्त करने से पहले मैं आपके सामने एक शिकायत रखना चाहता हूं। विधान-परिषद् ने तो भाषा के सम्बन्ध में कोई निर्णय किया नहीं और इसके सम्बन्ध में विचार भविष्य के लिये स्थगित कर दिया, किन्तु मसौदा-समिति ने अपने मन से विधान में इस आशय का एक खण्ड रख दिया कि सभा के कार्य, संचालन के लिये हिन्दी और अंग्रेजी का प्रयोग किया जायेगा। आज के समाचार-पत्रों में मैंने इस आशय का एक समाचार देखा है कि संयुक्त प्रान्त और बिहार के मुस्लिम सदस्यों ने यह बात मान ली है कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी सरकारी भाषा होगी। इसलिये मैं आवश्यक समझता हूं कि प्रारम्भ में ही इस समाचार का खण्डन कर दूं और साफ-साफ यह बता दूं कि हम लोग हिन्दी या उर्दू लिपि में लिखी

हिन्दुस्तानी को ही अपनी मातृभूमि की राष्ट्रीय-भाषा मानते हैं। जहां तक अंग्रेजी का सम्बन्ध है, मेरी राय में इसे कुछ दिनों के लिये रखना जरूरी है, ताकि वे लोग जो हिन्दुस्तानी नहीं जानते हैं, सभा के वाद-विवाद में अच्छा सहयोग दे सकें। मद्रास के एक माननीय सदस्य ने ठीक ही कहा था कि भाषा-साम्राज्य नहीं लादा जाना चाहिये। इस कारण इस सभा के कार्य-संचालन के लिये हिन्दी या उर्दू में लिखी हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी का प्रयोग होना चाहिये।

अब मैं विधान के मसौदे की ओर आता हूं, जो प्रधानतः इस उद्देश्य से बनाया गया है कि एक प्रजातंत्रीय असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना हो। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना होगा कि विधान के लिपिबद्ध प्रावधानों से, उनके स्वरूप तथा उनकी भावना से उन अभीष्टों की प्राप्ति में सहायता मिलती है या नहीं, जो उस लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव में दिये गये हैं, जिसे कि सभा ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया था और जिसे समस्त देश ने सहर्ष अपनाया था। मसौदे के प्रावधानों के मूल्यांकन के लिये हमें यह देखना होगा कि इस विधान से मनुष्य के प्राकृत अधिकारों की—उन अधिकारों की, जिनके बिना जीवन ही व्यर्थ है—कहां तक रक्षा होती है और गणतंत्रीय व्यवस्था के दुरुपयोग द्वारा सर्वसत्ताग्राही तानाशाही की स्थापना को रोकने के लिये कहां तक उसके प्रावधान उपयोगी सिद्ध होंगे। इन प्रावधानों से अल्पसंख्यकों को, यदि उदारता नहीं तो न्याय कहां तक सुनिश्चित रूप से प्राप्त होता है। और फिर अंतिम बात यह देखनी होगी कि देश के विभिन्न वर्गों के स्वतंत्र विकास में ये प्रावधान कहां तक सहायक हैं। इन प्रावधानों के मूल्यांकन के लिये हमें दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। पहली बात यह कि माननीय प्रस्तावकर्त्ता ने, अर्थात् माननीय डा. अम्बेडकर ने, जो कुछ स्वीकारोक्तियां की है, उनका क्या कारण है और दूसरी बात यह है कि गत 15 महीनों से, जब से हम स्वतंत्र हुये हैं, शासन सम्बन्धी कार्यों में हमारा क्या अनुभव रहा है। जिस समय कि सभा ने उन प्रस्तावों को स्वीकार किया, जो कि इस विधान के आधार हैं, उस समय हमारे सामने ऐसा कोई अनुभव नहीं था, किन्तु अब हमें यह अनुभव हो चुका है। माननीय प्रस्तावक महोदय ने पहली स्वीकारोक्ति, जो की है, वह उन्हीं के शब्दों में यों हैं:

> ''भारतीय भूमि स्वभावतः अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है''...।

[श्री जैड.एच. लारी]

''ऐसी स्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधान-मंडल पर न छोड़ना ही श्रेयस्कर है''। ससम्मान मैं यह कहूंगा कि उनका यह कथन सही है।

***एक माननीय सदस्यः** उनका यह कहना गलत है।

***श्री जैड.एच. लारीः** इस सम्बन्ध में मैं उन विभिन्न सुरक्षा कानूनों (Security Acts) की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा, जो विभिन्न विधान-मण्डलों द्वारा पास किये गये हैं और खास करके एक प्रांत के सुरक्षा-कानून की ओर, जिसके द्वारा दण्ड-विधान-संहिता की धारा 491 के अनुसार हाईकोर्ट में अपील करने का जो अधिकार है, वह भी अपहृत कर लिया गया है। दूसरी स्वीकारोक्ति, जो उन्होंने की, वह यह है: ''वैधानिक नैतिकता प्रकृतिजन्य भावना नहीं है। इसे अभ्यास द्वारा अपनाना होता है। हमें यह जानना ही चाहिये कि हमारे देशवासियों को अभी इसे सीखना होगा...।''

मैं तो कहूंगा कि न केवल देशवासियों को ही इसे सीखना होगा, बल्कि हमारी सरकार को भी इसे सीखना होगा। इस बात को सिद्ध करने के लिये मैं आपके समक्ष दो उदाहरण उपस्थित करता हूं। सभा को याद होगा कि कलकत्ता हाईकोर्ट में एक मामला पेश था, जिसके सिलसिले में उस हाईकोर्ट ने इस बात के निर्णय के लिये एक पूर्ण न्यायासन (full bench) नियुक्त किया था कि शब्द ''reasonable'' का, उन कानूनों के सम्बन्ध में जो गिरफ्तार करने या हिरासत में रखने की शक्तियां शासन को देते हैं, क्या प्रभाव अथवा अर्थ माना जाना चाहिये।

उक्त न्यायासन दूसरे दिन विचारार्थ बैठने वाला ही था कि हुकूमत ने इस आशय का अध्यादेश निकाल दिया कि शब्द ''reasonable'' के सम्बन्ध में यह समझा जायेगा कि वह शब्द वहां से हटा दिया गया है। निश्चय ही इस सम्बन्ध में हाईकोर्ट का यह कथन बिल्कुल सही था कि ''अवश्य ही गवर्नर महोदय ने अध्यादेश जारी करके अपने अधिकारों का अतिक्रमण नहीं किया है, पर उनका यह काम वैधानिक नैतिकता के प्रतिकूल है''। इस सम्बन्ध में एक दूसरा उदाहरण, जो मैं सभा के सामने रखूंगा, वह है एक स्वायत्त शासन सम्पन्न संस्था के बारे में—मेरा अभिप्राय है, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयों से—उसके प्रधान को अभी हाल में आदेश दिया गया है कि वह अपने पद से हट जाये और उसे एक

दूसरे व्यक्ति को दे दे। यद्यपि पदारूढ़ प्रधान को विश्वविद्यालय की सभा का तथा उस सम्प्रदाय का, जिसकी वह संस्था थी, विश्वास प्राप्त था; पर उसे ऐसा आदेश दिया गया। इसलिए मसौदे की व्यवस्थाओं का मूल्यांकन करने में हमें दो बातों को ध्यान में रखना होगा—एक तो जो माननीय मिनिस्टर ने दो स्वीकारोक्तियां की हैं, उनको और दूसरी अपने गत 15 महीनों के राजकीय कार्य-संचालन को।

नागरिक को सबसे पहले इस बात की अपेक्षा रहती है कि उसका जीवन और उसकी स्वतंत्रता दोनों ही पूर्णतः सुरक्षित हों। इस विशिष्ट सभा ने मूलाधिकारों पर विचार करते समय यह निश्चित किया था कि कोई भी व्यक्ति अपने प्राण या दैहिक स्वातंत्र्य से विधि की समुचित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा। अब इन शब्दों के स्थान पर ये शब्द रख दिये गये है ''विधि द्वारा स्थापित कार्य-प्रणाली को छोड़कर''। इससे तो उन लोगों का मूल अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है, जो विधान में इस अनुच्छेद को रखना चाहते थे। जब आप यह कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित कार्य-प्रणाली द्वारा अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से वंचित किया जा सकता है, तो उससे विधान-मण्डल को इस बात का अधिकार मिल जाता है कि वह जब चाहे ऐसा कानून बना सकती है, जिससे जीवन और स्वातंत्र्य पर प्रभाव पड़ता हो। इससे तो मूल अभिप्राय ही व्यर्थ हो जाता है। इसलिए यहां पहले के शब्दों को रखना नितान्त आवश्यक है। विधान का मसौदा उपस्थित करते हुए जापान और आयरलैंड के विधानों का भी हवाला दिया गया है, किन्तु जिन लोगों ने जापान और आयरलैंड के विधान बनाये हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध में एक व्यवस्था भी निर्धारित कर दी है। उदाहरण के लिए उन विधानों में यह कहा गया है कि जो भी व्यक्ति गिरफ्तार किया जायेगा, उसे इस बात का अधिकार है कि वह अपनी गिरफ्तारी का कारण पूछे और उसे यह भी अधिकार है कि न्यायालय द्वारा निर्णय कराये। इसलिए जापान और आयरलैंड के विधानों में तो इस सम्बन्ध में कार्य-प्रणाली निश्चित कर दी गई है और तब विधान को कहा गया है कि : ''कोई भी व्यक्ति अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से, विधि द्वारा स्थापित कार्य प्रणाली को छोड़कर अन्य किसी प्रकार वंचित न किया जायेगा''। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में जापान और आयरलैंड का उदाहरण अप्रासंगिक है।

[श्री जेड.एच. लारी]

व्यक्ति के जीवन और स्वातंत्र्य की सुरक्षा के बाद उसके घर की सुरक्षा अपेक्षित होती है। कहा गया है कि घर प्रत्येक व्यक्ति का अपना दुर्ग है और व्यक्ति के लिए घर एक पवित्र वस्तु है। सभी गणतंत्रीय विधानों में आप ऐसी व्यवस्था पायेंगे कि घरों में तलाशी नहीं ली जा सकती या वहां किसी वस्तु को कब्जे में नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसका कारण न दिखाया जाये और इसके सम्बन्ध में कारण बताते हुए शिकायत न की गई हो। अपने विधान में भी एक ऐसा ही अनुच्छेद होना चाहिए।

इसके बाद व्यक्ति की दूसरी आवश्यकता है, प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी अधिकार की। यहां मूलाधिकारों में इस अधिकार का कहीं उल्लेख ही नहीं है। राज्य की नीति के सम्बन्ध में जो निर्देशक सिद्धांत रखे गये हैं उनमें यह कहा गया है कि राज्य का यह प्रयास होगा कि प्रारंभिक शिक्षा प्रदान की वह व्यवस्था करे। इस सम्बन्ध में मेरा कहना है, श्रीमान्, कि यह नितान्त अपर्याप्त है। आवश्यकता इस बात की है कि इस बात को राज्य का कर्त्तव्य बना दिया जाये कि वह प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करे और यह बात मूलाधिकारों में आनी चाहिए।

अब मैं अनुच्छेद 13 की ओर आता हूं, जिसमें भाषण और अभिव्यक्ति का, शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन का, तथा पार्षद अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य दिया गया है। ये अधिकार दिये तो गये हैं, पर इनके सम्बन्ध में इतने प्रतिबंध लगा दिये गये हैं कि इन स्वातंत्र्यों का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। मेरी समझ से अनुच्छेद 13 के पूर्व में इन शब्दों को जोड़ देना ही यथेष्ट है: ''लोक-शान्ति तथा नैतिकता की समुचित आवश्यकताओं के अधीन रहते हुए''। मेरा मत है कि मसौदे में जो मूलाधिकार रखे गये हैं, वे अनिश्चित हैं, अपर्याप्त हैं और कई बातों में अस्पष्ट है।

दूसरी बात जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, वह यह है। गणतंत्र के दो प्रमुख एवं सहगामी सिद्धान्त ये हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त है, तथा यह कि बहुमत को शासनाधिकार प्राप्त है। अत: निर्वाचन-पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। प्रौढ़ मताधिकार का यही वास्तविक महत्त्व है, किन्तु यहां जो पद्धति

अपनाई गई है, अर्थात् जो एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्र रखा गया है, उससे वस्तुतः 49 प्रतिशत मतदाताओं का मताधिकार ही जाता रहता है। एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्र में यह सम्भव है कि वहां के ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग को भी, जिसकी आबादी 49 प्रतिशत है, मताधिकार से वस्तुतः वंचित कर दिया जाये। प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं में तो राजनैतिक आधार पर बने अल्पसंख्यक वर्गों को भी प्रतिनिधित्व का अधिकार होता है; इसलिए इस सम्बन्ध में प्रस्तुत विधान में जो व्यवस्था रखी गई है, उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यह दलील दी जा सकती है कि इंग्लैंड में यही पद्धति चालू हैं; किन्तु इसी कारण से मैंने सभा का ध्यान उन कई बुनियादी बातों की ओर आकृष्ट किया था, जिनका हवाला माननीय प्रस्तावक ने यहां दिया है। और मैं कहूंगा कि इस सम्बन्ध में आयरलैंड, स्विटजरलैंड या हाल के फ्रांस की पद्धति का अनुगमन करके एकल संक्राम्य मत द्वारा अथवा वर्द्धमान मत (cummulative voting) द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली चालू करना ही श्रेयस्कर है। इसके विरोध में यह दलील दी जा सकती है। कि इस पद्धति से दलों का बाहुल्य होता है। यह पद्धति आयरलैंड में 25 वर्षों तक चालू रही है और हर आदमी जानता है कि वहां 15 वर्षों से अधिक काल तक एक दल का ही शासन रहा है और वहां दो से अधिक दल भी कभी नहीं हुए। और इसके प्रतिकूल फ्रांस में उस समय भी जबकि इस सिद्धान्त को प्रयोग में लाने के लिए, जो कि वस्तुतः प्रजातंत्रात्मक है, स्वतः अधिक प्रगतिशील है, आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था नहीं थी, दलों की वहां एक बड़ी संख्या थी।

अब मैं विधान की दूसरी बात की ओर अर्थात् अध्यादेश सम्बन्धी व्यवस्था की ओर आता हूं। एक जमाना था, जब हम यही शिकायत किया करते थे कि अध्यादेश से ही राज हो रहा है और विधान-मण्डल का मत ही नहीं किया जाता। मैं यहां राष्ट्रपिता की बात का उल्लेख करूंगा। यह बतौर शिकायत के कहते थे कि ब्रिटिश राज्य में कानून के लिए और उसका पालन कराने के लिए वायसराय को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया है। कानून सम्बन्धी तथा शासन सम्बन्धी दोनों शक्तियां एक ही जगह निहित कर दी जायें, इसके विरुद्ध सारे देश में एक प्रचण्ड विरोध था। हमारी राय में तब से ऐसी कोई नई बात नहीं हुई है कि हम इस बारे में अपना रुख बदलें। अध्यादेश द्वारा शासन होना ही नहीं

[श्री जैड.एच. लारी]

चाहिए। कानून बनाने का काम केवल विधान-मण्डल को ही करना चाहिए। यह कहा जाता है कि जब विधान-मण्डल न समवेत हो और सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो ऐसी दशा में अध्यादेश जारी करना ही होगा। किन्तु अब समय और दूरी को लेकर तो कोई रुकावट रह नहीं गई और विधान-मण्डल दो दिनों में समवेत हो सकता है; इसमें कोई भी कठिनाई नहीं है। और अगर कोई कठिनाई हो भी तो आवश्यकता होने पर, उसे दूर करना ही होगा और फिर हमें यह देखना होगा कि इस अध्यादेश व्यवस्था का असर क्या होता है। इस अध्यादेश सम्बन्धी अधिकार के प्रयुक्त होने से विधायिनी सभा केवल एक मुहर मात्र रह गई है। हमारे प्रान्त में तो शायद ही कोई कानून होगा जो पहले इस अध्यादेश व्यवस्था से न उत्पन्न हुआ हो। परिषदात्मक हुकूमत में वस्तुतः मंत्रिमण्डल ही नीति निश्चित करता है। एक बार जब उसने कोई अध्यादेश बना लिया और वह कानून के रूप में चल पड़ा तो फिर बहुसंख्यक दल के लिए भी पीछे मुड़ना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि वस्तुतः मंत्रिमण्डल ही कानून बनाने के सम्बन्ध में निश्चय किया करता है। इसलिए मैं कहूंगा कि ऐसे प्रावधान की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं है, जिसके द्वारा अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया जाता हो।

इसके बाद सद्यस्कृत्यता की स्थिति का प्रश्न आता है। निश्चय ही सद्यस्कृत्यता के सम्बंध में एक खण्ड मसौदे में होना चाहिए। किन्तु मसौदे में सद्यस्कृत्यता का जो उल्लेख है, वह इतना व्यापक है कि न केवल प्रत्यक्ष हिंसा की दशा में अथवा प्रत्यक्ष आक्रमण की दशा में, जैसा कि अमेरिका में हुआ, बल्कि हिंसा का संकट दिखाई देने पर भी सद्यस्कृत्यता की दशा घोषित की जा सकती है। यह बात बड़ी खतरनाक है और इसे दूर करना ही चाहिए।

अब मैं मसौदे के उस भाग पर आता हूं, जिसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों का विवरण है। इन अधिकारों के सम्बन्ध में मसौदे में जो पहली बात विचारणीय है, वह है संरक्षित स्थानों के सम्बन्ध में प्रावधान। यह प्रावधान अपने विधान की एक अपूर्व व्यवस्था है। उसके अनुसार अल्पसंख्यकों के हित-संरक्षण की व्यवस्था यों की गई है कि विधान-मण्डल में उन्हें संरक्षित स्थान दे दिये गये हैं, पर उसमें यह सुनिश्चित नहीं है कि अपने प्रतिनिधियों के चुनाव में सम्बंधित अल्पसंख्यक

वर्ग की अपनी कोई आवाज भी होगी। यह व्यवस्था बिल्कुल ही व्यर्थ है, वरन् यह प्रवंचना मात्र है, अल्पसंख्यकों के संरक्षण की एकमात्र व्यवस्था यह होनी चाहिए कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली अपनाई जाये। एक लेखक ने 1948 की गोलमेज सभा में इस पद्धति का एवं आयरलैंड में यह कैसे काम करती है, इसकी चर्चा करते हुए कहा था कि इससे अल्पसंख्यकों के प्रति समुचित न्याय हुआ है और साथ ही एक स्थायी हुकूमत की जो आवश्यकताएं हैं, वह भी इससे पूरी हुई हैं।

अब मैं सरकारी नौकरियों के प्रश्न को लेता हूं। कितना विचित्र वैषम्य है। अल्पसंख्यकों को विधान-मण्डलों में संरक्षित स्थान देने का प्रावधान तो विधान में किया गया है, जो बिल्कुल व्यर्थ है, किन्तु जहां नौकरियों का सवाल आया है, वहां केवल इतना ही कह दिया गया है कि उनकी मांगों पर विचार किया जायेगा। यह तो अच्छी मौखिक शुभ-कामना है। संयुक्तप्रांत में तथा अन्य प्रांतों में, इस सम्बंध में, गत महीनों का जो अनुभव है, वह बतलाता है कि केवल मौखिक कामना ही पर्याप्त नहीं है। इसके सम्बन्ध में विधान में कोई प्रावधान होना चाहिए। विधान-मण्डलों में आपने जो संरक्षित स्थान दिये हैं, उन्हें तो आप चाहें तो लौटा लें, किन्तु नौकरियों में आप हमें, भगवान के लिए अनुरोध है कि संरक्षण अवश्य दें। यहां मैं संयुक्तप्रान्त के मुस्लिमों के लिए ही नहीं बोल रहा हूं, बल्कि वहां के अन्य अल्पसंख्यकों के लिए भी बोल रहा हूं। आपने ऐंग्लो-इंडियन्स के लिए तो यह संरक्षण दिया है, पर मुसलमानों को यह नहीं दे रहे हैं। आखिर यह भेदभाव क्यों? संयुक्तप्रान्त की अवस्था को ही लीजिए। यदि गत 12 महीनों की कार्रवाई का आप नतीजा देखें, तो आप पायेंगे कि मुश्किल से पांच प्रतिशत मुसलमान नौकरियों में लिये गये हैं। अगर आप नौकरियों से निकाले गये, बरखास्त किये गये लोगों की तालिका देखें, तो आपको मालूम होगा कि इनमें मुसलमानों की संख्या 75 प्रतिशत है, किन्तु नई भर्तियों में मुश्किल से उनकी संख्या पांच प्रतिशत होगी।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): आपके नेताओं ने पाकिस्तान में क्या किया?

***श्री जैड.एच. लारीः** मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि मैं पाकिस्तान के पदचिह्नों पर चलूं। मैं वैसा करने के लिए तैयार नहीं हूं।

उपाध्यक्षः शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारी:** अपने अधिकारों का पट्टा मैंने पाकिस्तान को नहीं लिख दिया है। मैं भारतीय नागरिक की हैसियत से यहां खड़ा हूं। पाकिस्तान क्या करता है और क्या नहीं करता है, इससे मेरा कोई सरोकार नहीं।

***एक माननीय सदस्य:** आज आपको बुद्धि आ गई है।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारी:** हम लोगों ने यह कभी नहीं कहा कि यहां के मुसलमान पाकिस्तान चले जायेंगे। हम इस भूमि की सन्तान हैं और इस नाते हमारा दावा है कि भारतीय नागरिकों के अधिकार हमें भी प्राप्त हैं।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी:** आपके यू.पी. आदि प्रान्तों के नेता भी तो भाग गये।

***श्री जैड.एच. लारी:** आप बीच-बीच में टोक कर जो कुछ कह रहे हैं, उससे यही पता चलता है कि कितने अनुदार कितने अप्रजातंत्रीय.....

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***श्री जैड.एच. लारी:** आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। श्रीमान्, मैं यह कह रहा था कि समय बहुत कम है।

***उपाध्यक्ष:** आपका समय तो समाप्त हो चुका है।

***श्री जैड एच. लारी:** कृपया मुझे दो मिनट और दीजिए।

अब मंत्रिमण्डल का सवाल आता है। मैं मानता हूं कि इस सम्बंध में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था विधान में नहीं की जा सकती, परिषदात्मक शासन पद्धति में इसकी कल्पना ही नही की जा सकती किन्तु इस बात पर तो आपको विचार करना ही चाहिए कि क्या हमारे लिए यह ठीक नहीं होगा कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व चालू करके हम अध्यक्षात्मक पद्धति पर चलें। उस हालत में स्विस पद्धति के अनुसार मंत्रिमण्डल का निर्वाचन करना सम्भव होगा। किन्तु विधान के इस ढांचे में, मैं मानता हूं कि संरक्षण की व्यवस्था लिपिबद्ध नहीं की जा सकती है। मैं मानता हूं कि विधान का जो स्वरूप है, उसको देखते हुए यथाशक्ति जो कुछ भी इस सम्बन्ध में किया जा सकता था, किया गया है।

अन्त में मैं सभा से इस बात पर विचार करने का अनुरोध करूंगा। विधान में एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जो प्रावधान में विपक्षी दल का अस्तित्व स्वीकार करती हो। कुछ दिनों से, जब से कि समाजवादी लोग कांग्रेस से अलग हो गये हैं, जिम्मेदार व्यक्तियों की ओर से इस आशय की बातें कही गई हैं—मैं यह नहीं कहता कि यह राय पक्की है—कि बहुमत प्राप्त दल यह नहीं चाहता कि एक विपक्षी दल का अस्तित्व हो। जैसा कि दक्षिणी अफ्रीका में अथवा इंग्लैंड में या अन्य देशों में है, यहां भी विपक्षी दल के नेता का एक स्थान होना चाहिए और इस तरह किया जा सकता है कि विपक्षी दल के नेता के वेतन की व्यवस्था मसौदे में कर दी जाये, जैसा की अन्य देशों में है। हम जानते हैं कि जो पद्धति अब आगे बरती जाने वाली है, उसमें मेरे जैसे व्यक्तियों के पुनः विधान-मण्डल में आने की कोई उम्मीद नहीं है। इसलिये हमारे हित के लिए नहीं बल्कि गणतंत्र के हितों के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा समुचित विपक्षी दल हो, रचनामूलक हो और देश तथा मातृभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करता हो इसकी सुनिश्चित व्यवस्था तभी हो सकती है, जब कि स्वयं विधान में आप इसे लिपिबद्ध कर दें।

मसौदा-समिति ने जो और संशोधन रखे हैं, उसमें एक ऐसा सुझाव है कि प्रधान को परामर्श देने के लिये एक परामर्श समिति नियुक्त की जाये और इस प्रसंग में विपक्षी दल के नेता का स्थान स्वीकार किया गया है। किन्तु संघ के विधान में तथा प्रादेशिक राज्यों के विधान में भी उसका स्थान स्वीकृत होना चाहिए।

इन कतिपय विचारों को व्यक्त कर मैं अपनी बात खत्म करता हूं। डा. अम्बेडकर की कतिपय स्वीकारोक्तियों का मैंने यहां हवाला दिया है जरूर, पर अपने देशवासियों के सौजन्य पर, उदारता पर मुझे पूर्ण विश्वास है। आशा है कि हमारे देशवासी अवसर के अनुकूल अपने को महान् बनायेंगे और जब कि संकट का समय बीत गया है, लोगों का आवेश शान्त हो चुका है, देशवासी वास्तविकता को अपनायेंगे और अधिक मित्रवत् हो जायेंगे, जिससे कि भारत के बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक वर्गों के बीच, न केवल सैद्धांन्तिक बल्कि वास्तविक साम्य आ जाये और हम सब भारतवर्ष को महान् बनाने में दत्तचित्त हो सकें।

***श्री हुसैन इमाम** (बिहार: मुस्लिम): विधान के सम्बन्ध में, जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है, मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं। जिन बातों

[श्री हुसैन इमाम]

के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना चाहता था, उनमें से कइयों पर मेरे पूर्ववक्ता ने प्रकाश डाला है और इसलिए मेरा काम बहुत कुछ हल्का हो गया है।

मैं यह जरूर कहूंगा कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष को यहां मैं बड़ी ही विकट स्थिति में पाता हूं। वामपक्षियों ने तो उनके विरुद्ध यह कहा है कि उन्होंने सोवियत रूस के विधान का अनुगमन नहीं किया और दक्षिण पंथियों ने उन पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने प्राचीन परम्परा के अनुसार ग्राम-पंचायतों को इकाई नहीं स्वीकार किया। मैं कहूंगा कि मेरे कई मित्रों के दिमाग में कुछ भ्रमात्मक बातें हैं। जब वह यह कहते हैं कि विधान में उन सभी मुसीबतों का, बुराईयों का हल होना चाहिए, जिनसे कि आज देशवासी तकलीफ पा रहे हैं। यह काम विधान का नहीं है कि वह रोटी और कपड़े की व्यवस्था करे। इस सभा के एक बड़े ही गम्भीर एवं संयत सदस्य ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि इन बातों के लिये विधान में कोई प्रावधान नहीं है। मेरा कहना है, श्रीमान्, कि विधान जिस देश के लिए भी बनाया जाये, वह देश की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया जाता है। हमें यही देखना चाहिए कि वह सारे प्रावधान, जो कि हमारी अपनी परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक हैं, विधान में रखे गये हैं या नहीं।

पहली त्रुटि जो इस सम्बन्ध में मुझे इसमें दिखाई दे रही है, वह यह है कि इसमें जनता के सर्वसत्ताशील होने का कोई उल्लेख नहीं है। जब तक आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते कि जनता सर्वसत्ता-सम्पन्न है, उसी से सारी शक्तियां प्राप्त की गई हैं और यह समस्त विधान जनता की ही इच्छा के आधार पर बना है, तब तक तरह-तरह के भ्रम इस सम्बन्ध में उत्पन्न होंगे।

इससे कई बातों के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई है। उदाहरण के लिए उन प्रदेशों के नामों को ही लीजिए, जिन्हें हम पहले भारतीय रियासतें तथा ब्रिटिश भारतीय प्रान्त कहा करते थे। इन दोनों ही प्रकार के प्रदेशों को विधान में जो स्थान दिया गया है, उसे हम शायद ही समुचित और सम मान सकते हैं। जिन लोगों ने स्वराज्य के लिए, स्वतंत्रता के लिए प्रमुख रूप से युद्ध किया, उन्हें तो कम अधिकार दिये गये हैं; पर रियासतों के लोगों को, जिन्होंने

स्वातंत्र्य-संग्राम में प्रान्तीय जनता से कहीं कम हिस्सा लिया, अधिक अधिकार दिये गये हैं। कई रियासतों के आयात-कर को केन्द्रीय कोष से पूरा करने की व्यवस्था की गई है। नागरिकता के सम्बन्ध में हमें बताया गया है कि समस्त देश में केवल एक ही नागरिकता—भारतीय नागरिकता—रहेगी। जब सभी लोगों को नागरिकता के सभी अधिकार समान रूप से प्राप्त है, तो रियासतों के लोगों को कुछ भिन्न अधिकार क्यों कर दिये जा सकते हैं? रियासतों के लोग आय-कर से मुक्त रखे गये हैं, पर प्रान्तों पर वह कर लागू किया गया है। एक या दो रियासतों को छोड़कर, जिनके सम्बन्ध में कि निगम कर लागू हो सकता है, अन्य रियासतें इससे मुक्त हैं। इन सभी बातों को देखते हुए मैं तो यह सुझाव दूंगा कि एक तरह के आधिपत्य के साथ सर्वत्र एकरूपता होनी चाहिए। विधान के मसौदे के सम्बन्ध में यह मेरी पहली बुनियादी आपत्ति है।

दूसरी बात यह है कि जैसा डा. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है, मेरे मत से प्रान्तों और रियासतों के बीच किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखना चाहिए। रियासतों को जो सेना रखने का अधिकार दिया गया है, यह अनुचित है। भारत आज गतिशील अवस्था में है। सरदार पटेल की सुबुद्धि और दृढ़ता से भारतीय रियासतों का प्रश्न बहुत कुछ हल हो गया है और अब ये हमारी प्रगति में रुकावट नहीं रह गई है। कल जोधपुर के प्रधानमंत्री ने तथा मध्यभारत के एक प्रतिनिधि ने यहां भाषण देते हुए कहा कि प्रान्तों और रियासतों में एकरूपता होनी चाहिए और इससे मुझे प्रसन्नता मिली। मैं कोई कारण नहीं देखता कि सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा रियासत के नागरिकों के लिए बन्द रखा जाये। अगर वे भारत के नागरिक हैं, तो फिर उन्हें भी हमारे ही समान यह अधिकार प्राप्त है कि सर्वोच्च न्यायालय से अपने अधिकारों और हितों के सम्बन्ध में न्याय की मांग करें। मेरी समझ से इन सारी बातों का कारण यह है कि हमने जनता को सर्वसत्तासम्पन्न नहीं माना है और न इस बात को माना है कि एकरूपता होने से अपने आप एक ऐसी प्रणाली चल पड़ेगी इसके अनुसार शक्ति और दायित्व की दृष्टि से सभी लोग कानून की निगाह में बराबर हो जायेंगे।

मुझे इस बात पर भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि डा. अम्बेडकर जैसा वैधानिक-कानून का विद्वान् इस तथ्य को कैसे भूल गया कि अपरिषदात्मक

[श्री हुसैन इमाम]

अधिशासी-मण्डल की जिम्मेदारी परिषदात्मक अधिशासी-मण्डल से कम नहीं है। अगर आप अच्छी तरह देखें, तो आपको मालूम हो जायेगा कि अमेरिका की प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) की समितियां तथा वहां की उत्तरागार इंग्लैंड की लोक-सभा (House of Commons) से शासन सम्बन्धी कार्यों पर अधिक नियंत्रण रखती है। यह कहना गलत है कि अमेरिका के अधिशासी-मण्डल के कार्यों के सम्बन्ध में पूछताछ करने तथा उन्हें ठीक करने का मौका प्रेसीडेंट के चार वर्ष के कार्यकाल के समाप्त होने पर नये निर्वाचन के समय ही आता है। इसके प्रतिकूल वहां प्रेसीडेंट पर दैनिक नियंत्रण भी रखा जाता है और सीनेट की समितियों तथा प्रतिनिधि-सभा के सम्बन्ध में तो यह बात ब्रिटेन की लोक सभा से भी ज्यादा लागू है। इस सम्बन्ध में बतौर उदाहरण के एक विख्यात घटना का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेसीडेंट विल्सन राष्ट्रमण्डल (League of Nations) सम्बन्धी अपनी योजना को इसलिये अग्रसर न कर सके कि सीनेट की समितियां उससे सहमत नहीं थी। विभिन्न देशों में भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति भी वहां सीनेट की स्वीकृति पर होती है। इसलिए यह कहना गलत है कि अपरिषदात्मक अध्यक्षमूलक पद्धति में अधिशासी-मण्डल पर कोई नियंत्रण नहीं रहता या अगर रहता भी है, तो वह बहुत दूरस्थ होता है। अमेरिकन पद्धति में अधिशासी-मण्डल पर, अगर ज्यादा नहीं तो उतना लोक-नियंत्रण जरूर रहता है, जितना कि ब्रिटेन की परिषदात्मक पद्धति में है। इस मसले पर मैं और बहस नहीं करना चाहता, क्योंकि आगे चलकर जब हम इस विषय पर पुनः विचार करेंगे, तो हमें उस पर विचार व्यक्त करने का पुनः अवसर मिलेगा।

जैसा कि मैंने पहले कहा था, मैं फिर कहूंगा कि विधान इस प्रकार निर्मित होना चाहिये कि वह देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। मैं नेताओं से कहूंगा कि वे देश की हालत पर गौर करे। भारत के केन्द्र संयुक्तप्रान्त को देखिये, जहां एक मात्र दूसरा राजनैतिक दल समाजवादियों का है, जो बहुत ही प्रबल दल माना जाता था, स्थानीय और जिला बोर्डों के चुनावों में वहां क्या हुआ? वे हार गये। विधान-मण्डल के चुनाव में 12 स्थानों में जिन्हें समाजवादियों ने खाली किया था, हर एक सीट उनके हाथ से जाती रही। क्या इस प्रकार आप परिषदात्मक गणतंत्र चला पायेंगे? परिषदात्मक गणतंत्र के लिये एक प्रभावशाली विपक्षी दल का

होना आवश्यक है और अगर आप निर्वाचन क्षेत्रों को एक सदस्यात्मक रखते हैं, तो कोई प्रभावपूर्ण विपक्षी दल होगा ही नहीं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति अपनाकर ही आप देश में तानाशाही राज्य स्थापित होने के खतरे से बच सकते हैं। मैं बहुत विनम्रतापूर्वक आपके समक्ष अपना यह विचार रख रहा हूं कि देश में गणतंत्र की रक्षा के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य-व्यवस्था ऐसी हो, जिसमें एक विपक्षी दल सामने आये ही। कांग्रेस की प्रतिष्ठा, उसकी सर्वप्रियता, उसका नाम—इनको इतनी महत्ता प्राप्त हो गई है कि उसके विरुद्ध खड़ा होना किसी के लिये भी असम्भव है और इसका परिणाम यह है, जैसा कि कई बार इंग्लैंड में हो चुका है कि बहुसंख्यक निर्वाचकों के मतदान का कोई मूल्य नहीं रह जाता। वह इस प्रकार कि अगर तीन उम्मीदवार हुए, तो उनमें हारे हुए दो उम्मीदवारों के कुल मत, हो सकता है विजयी उम्मीदवार को मिले मतों से ज्यादा हों। अगर यह मान लिया कि तीन उम्मीदवार न होंगे, तो भी बहुत से मतदाताओं के मताधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। अगर 60 प्रतिशत और 40 प्रतिशत मत उम्मीदवारों को मिलें तो 40 प्रतिशत निर्वाचकों का कोई प्रतिनिधि नहीं जा सकता। इसके प्रतिकूल आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार, जो कि यूरोप के प्रायः सभी सद्यः समुन्नत देशों में प्रचलित है, आपको हर विचारधारा के लोगों का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकेगा और.....।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारतीय** (मद्रासः जनरल): यूरोप के वह कौन से देश हैं जिनमें आम निर्वाचनों में आनुपातिक प्रतिनिधान की पद्धति चालू है?

***श्री हुसैन इमामः** अमेरिका में यह पद्धति चालू...।

***अनेक माननीय सदस्यः** नहीं, नहीं।

***श्री हुसैन इमामः** स्विटज़रलैंड में यही प्रणाली प्रचलित है। (*नहीं नहीं की आवाज़ें*) अन्य किसी देश ने यह पद्धति न भी चला रखी हो, पर हमारे देश के लिये तो यह आवश्यक है। हमें दूसरों का अनुगमन नहीं करना चाहिये। जैसा कि मैंने प्रारम्भ में कहा है, हमें एक ऐसा विधान तैयार करना चाहिये, जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि दूसरों का अनुगमन किया जाये।

[श्री हुसैन इमाम]

मेरे पूर्ववक्ता ने एक बात कहीं है जिसका मैं खुलासा कर देना चाहता हूं। उनका कहना है कि अल्पसंख्यकों के जाती कानून हैं, उनको सुरक्षित रखा जाये यानी विधान-मण्डल उनमें रद्दोबदल न करे। यह कहना सही है। बहुसंख्यक-वर्ग के लिये तो इस सुरक्षा की आवश्यकता है ही नहीं, क्योंकि बिना उनकी स्वीकृति और सहमति के विधान-मंडल में कोई बात पास नहीं हो सकती। पर यह सुविधा अल्पसंख्यकों को तो प्राप्त नहीं है। इसलिये यह आवश्यक है कि मुसलमानों के एवं उन अन्य सम्प्रदायों के, जो कि ऐसा चाहते हों, जाती कानूनों के सम्बन्ध में विधान-मण्डल कोई हस्तक्षेप न करे, जब तक कि स्वयं उसी सम्प्रदाय के बहुसंख्यक सदस्य अपनी सहमति न दे दें।

अब मैं विधान-मण्डलों में स्थान-संरक्षण के प्रश्न पर आता हूं। जैसा कि मि. लारी ने कहा है, जब कि समुचित प्रतिनिधान की कोई व्यवस्था नहीं रखी जाती है, तो विधान-मण्डलों में संरक्षित स्थान रखने से कोई फायदा नहीं है। इसलिये मेरा यह कहना है कि आनुपातिक प्रतिनिधान का प्रावधान विपक्षी दल की स्थापना के लिये आवश्यक तो है ही, पर इससे अतिरिक्त लाभ यह भी होगा कि अल्पसंख्यकों के हितों के लिये भी यह फायदेमन्द होगा। अल्पसंख्यकों के लिये संरक्षित स्थान रखने की कोई जरूरत नहीं है। अगर आप उनके लिये एक बड़ी संख्या में आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था कर दें। उदाहरण के लिये प्रत्येक जिला के एक या दो निर्वाचन क्षेत्रों को बहुसदस्यात्मक बना दीजिये, जिसमें प्रत्येक में 10 या 12 स्थान हों। और अगर आप सूची-पद्धति अपनाते हैं, जो कुछ दिन पहले जर्मनी में प्रचलित थी, तो उससे और भी उद्देश्य सिद्ध होगा क्योंकि उस हालत में मतदान व्यक्तिगत उम्मीदवारों के आधार पर न होगा, बल्कि समूची सूची के ही आधार पर होगा। हम चाहते हैं कि प्रतिनिधान अधिकतर दलों के आधार पर हो और व्यक्तियों के आधार पर न हो। हम लोग नहीं चाहते हैं कि फ्रांसीसी इतिहास की पुनरावृत्ति यहां भी हो। किन्तु हम यह भी नहीं चाहते हैं कि एक दल का शासन हो। ऐसा शासन प्रायः बिगड़कर अप्रजातंत्रीय हो जाया करता है।

श्रीमान्, अपना वक्तव्य समाप्त करने से पहले चन्द शब्द मैं भाषा सम्बन्धी प्रश्न के सिलसिले में कहूंगा। इस विषय को लेकर आज जो भावना लोगों में व्याप्त है, उसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कहूंगा। अंग्रेजी भाषा को अभी कुछ दिनों तक जारी रखना आवश्यक है, इसके पक्ष में दक्षिण भारतीय मित्रों ने बहुत कुछ

कहा है। किन्तु जहां तक हिन्दी का प्रश्न है, उस पर कोई मतभेद नहीं हैं; पर इस सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि आखिर हिन्दी है क्या। व्यक्तिगत रूप से मैं उस हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार हूं, जिसमें सरदार पटेल बोलते हैं और जिसमें उन्होंने अभी हाल में बम्बई में अपना भाषण दिया था। वह उर्दू भाषी क्षेत्र से नहीं आए हैं। वह गुजराती हैं और ऐसी हिन्दी बोलते हैं, जो देश में सर्वत्र बोली जाती है। चौपाटी मैदान में दी हुई उनकी वक्तृता मैंने रेडियो पर सुनी थी। वह हिन्दुस्तानी—या आप, चाहे जो नाम इसे दें—के सिवाय और कुछ नहीं थी। चौपाटी में जो उनका भाषण हुआ था, वह मेरी समझ से हिन्दुस्तानी में था। उनके अधीनस्थ विभाग—आल इन्डिया रेडियो—में जो भाषा व्यवहृत होती है, उससे भी ज्यादा अच्छी तरह, लोग इस जुबान को समझते हैं, जिसमें उनकी चौपाटी की वक्तृता हुई थी।

इस सम्बन्ध में भी, श्रीमान्, हमें यह बताया गया है कि हम गांधीजी की विचारधारा का अनुगमन कर रहे हैं। किन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि आखिरी वक्त तक महात्मा गांधी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। वह देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी के पक्ष में थे। जहां तक लिपि का सम्बन्ध है, देवनागरी की तुलना में अन्य कोई लिपि नहीं ठहर सकती। यही सर्वोत्तम माध्यम है। पर भाषा कौन सी रखी जाये? वस्तुतः हिन्दी को ही हम हिन्दुस्तानी कहते हैं, अगर उसमें आप संस्कृत के बड़े-बड़े शब्द न मिला दें और उभय लिंग शब्द न भर दें। जैसा कि मैंने कहा है, उपप्रधान-मंत्री की भाषा को ही, जो कि स्वयं किसी उर्दू भाषी प्रान्त के नहीं हैं, हमें इस सम्बन्ध में आदर्श मानना चाहिए। अगर विधान-परिषद् के सदस्य इसे स्वीकार करें, तो मैं सुझाव दूंगा कि देवनागरी और उर्दू लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी को ही हमें राष्ट्रभाषा स्वीकार करना चाहिए और यही महात्मा गांधी की अन्तिम इच्छा थी और यही भाषा आज देश में सर्वत्र सर्वाधिक मान्य है।

श्रीमान्, विधान केवल एक बार ही बनता है। यह ऐसी चीज़ नहीं है जो रोज़-रोज़ बनाई जाये। इसलिए सही और उचित बात यह है कि विधान बनाने में शान्त चित्त हो, हम गम्भीरतापूर्वक सभी मसलों पर विचार करें और ऐसा करते समय हमारे दिलों में कोई मालिन्य, कोई छिपाव नहीं होना चाहिए और न यहां

[श्री हुसैन इमाम]

कोई उत्तेजना ही आने देनी चाहिए। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह अतीत को भूल जाये और जो भी परस्पर अपराध हुए हों उन्हें क्षमा कर दे। रोज-रोज का यह बताया जाना कि पाकिस्तान की स्थापना के लिए हम जिम्मेदार है, बड़ा ही दुखद है। पाकिस्तान के निर्माण में कांग्रेस का भी उतना ही हाथ है, जितना अन्य किसी व्यक्ति का। इसी भावना से प्रेरित होकर मैं इस बात के लिए अपील करूंगा कि मुसलमानों को बतौर बन्धक या ज़ामिन के न समझा जाये। हमें यही समझना चाहिए कि वे भारतीय नागरिक हैं और भारत की—उनकी जन्म-भूमि की—सुख-सुविधाओं के उपयोग का उनको भी वैसा ही अधिकार है, जैसा कि अन्य किसी भारतीय को। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूल** (संयुक्तप्रान्तः मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय डा. अम्बेडकर ने मसौदे के सम्बन्ध में बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण और सरल व्याख्या यहां उपस्थित की है, एतदर्थ मैं उनका अभिनन्दन करती हूं। उनको तथा मसौदा-समिति को जो काम सम्पादित करना था, वह कोई सरल काम नहीं था और निश्चय ही वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीमान्, विधान-निर्माण में अपना कोई भी सहयोग हो, इसे मैं परम सौभाग्य की बात समझती हूं। यह अवसर कितना पवित्र है, इसे मैं भली भांति समझती हूं। दो शताब्दियों की पराधीनता के बाद भारत दास्य-कारावास से निकल कर आज स्वातंत्र्य रश्मियों का आलोक देखने में समर्थ हुआ है। आज इस ऐतिहासिक अवसर पर हम स्वतंत्र भारत के विधान-निर्माणार्थ यहां समवेत हुए हैं। हमारा विधान ऐसा होना चाहिए, जो हमारे भविष्य का स्वरूप निश्चित करता हो और इस महादेश में बसने वाले तीस करोड़ नर-नारियों के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अवस्थिति का रूप निर्धारण करता हो। इसलिए हमें अपनी जिम्मेदारियों से पूर्णतः अवगत हो जाना चाहिए और इस विचार के साथ, कि जैसे भी हो हम एक ऐसा विधान प्रस्तुत करें, जो हमारे देशवासियों की संस्कृति, प्राकृतिक योग्यता एवं उनकी आवश्यकताओं के सर्वथा अनुरूप हो, विधान-निर्माण के काम में संलग्न होना चाहिए।

इस तथ्य के सम्बंध में, कि हमारे बहुत से प्रावधान अमेरिकन, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैंड आदि के विधानों से लिये गये हैं, यहां बहुत कुछ कहा गया है। इस प्रकार अनुकरण करने में मुझे तो कोई क्षति नहीं दिखाई देती। हां, यह जरूरी है कि ऐसा करने में हमें अपने राष्ट्र के हितों का, उसके कल्याण एवं सुख सम्पत्ति का सदा ध्यान रखना चाहिए। इसमें शक नहीं है कि यह मसौदा इस प्रकार बनाया गया है कि वर्तमान शासन-व्यवस्था में यह ठीक-ठीक बैठ सके। पर आज जो देश की हालत है, उसमें ऐसा करना लाजिमी है। यह तो मानना ही होगा कि हम सब एक विशेष प्रकार की शासन-व्यवस्था के आदी हो गये हैं। यदि विधान के मसौदे में वर्तमान शासन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किया जाता, तो देश में एक अव्यवस्था, गड़बड़ी पैदा हो जाती। भारत के लिए गणतंत्रीय शासन व्यवस्था एक नई व्यवस्था है। यहां के लोग शताब्दियों के स्वेच्छाचारी शासन के आदी हो गये हैं, और इसलिए सर्वोत्तम मार्ग यही होगा कि परिवर्तित स्थितियों के अनुसार उसमें यत्र-तत्र कुछ हेर-फेर करके अभी कुछ काल तक वही शासन-व्यवस्था चलाई जाये, जिसके कि लोग आदी हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अब यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है कि सारी सत्ता जनता से प्राप्त होती है और भारत के भाग्य को बनाना या बिगाड़ना जनता के हाथ की बात है।

डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसकी यहां बड़ी तीव्र आलोचना की गई है। उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर से पूर्णतः सहमत हूं। आधुनिक प्रवृत्ति यही है कि नागरिक का अधिकार प्रधान माना जाये, न कि किसी निकाय का या ग्राम-पंचायतों का, क्योंकि ये निकाय बहुत निरंकुश हो सकते हैं।

श्रीमान्, मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मैं ऐसा देखती हूं कि जो अधिकार एक हाथ से दिये गये हैं, वही दूसरे हाथ से छीन भी लिए गये हैं। मूलाधिकार ऐसे होने चाहिए कि उनके सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध न हो और विधान-मण्डल कानूनों द्वारा उनमें परिवर्तन न कर सके। कम से कम इतना तो जरूर होना चाहिए कि विधान द्वारा कुछ नागरिक स्वतंत्रताओं को अवश्य ही सुरक्षित रखा जाये और यह न होना चाहिए कि विधान-मण्डल उनको आसानी से छीन सके। इसके प्रतिकूल

[बेगम ऐज़ाज़ रसूल]

हम यहां यह पाते हैं कि इन अधिकारों के सम्बन्ध में बहुत से प्रतिबंध और अपवाद रख दिये गये हैं इसका अर्थ यह हुआ कि आज जो अधिकार दिये गये हैं, वही कल विधान-मण्डल के कानून द्वारा बदले भी जा सकते हैं।

मेरी समझ से एक ऐसे माध्यम के लिये प्रावधान अवश्य होना चाहिए, जो सदा इस बात पर दृष्टि रखे कि इन मूलाधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धान्तों का सभी प्रान्तों में सही-सही पालन हो; अन्यथा ऐसे किसी माध्यम के अभाव में यह सम्भव है कि ऐसे साम्प्रदायिक संगठनों का आविर्भाव हो जाये जो अपने-अपने सम्प्रदायों के हितों की रक्षा पर ही सदा ध्यान दें। उस माध्यम या एजेंसी का यह काम होगा कि वह उन बातों को सरकार की निगाह में लायेगी, जहां इन मूलाधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धान्तों का सही-सही पालन न किया जा रहा हो। आशा है यह महती सभा मसौदे के खण्डों पर विचार करते समय मेरे इस सुझाव पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी।

उपाध्यक्ष महोदय, एक नारी होने के नाते मुझे इस बात से परम संतोष है कि स्त्री अथवा पुरुष होने के कारण अब कोई भेदभाव न बरता जायेगा। यह उचित ही है कि मसौदे में इस आशय का प्रावधान रख दिया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अब स्त्रियां भी इस नवीन विधान के अधीन अवसर-साम्य प्राप्त करने की आशा रख सकती हैं।

मैं विधान सम्बन्धी विस्तार की बातों में नहीं जाऊंगी, क्योंकि जब हम विधान के प्रत्येक खण्ड पर विचार करेंगे, उस समय मुझे उसके विभिन्न प्रावधानों के सम्बन्ध में अपना मत ज्ञापित करने का अवसर मिलेगा। किन्तु गत दो या तीन दिनों के अन्दर इस सभा-भवन में कई बुनियादी प्रश्न उठाये गये हैं और उन पर वाद-विवाद भी हुआ है और इनके सम्बन्ध में मैं प्रसंगात अवश्य ही कुछ कहूंगी।

अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षित स्थानों का जो प्रश्न है, उस पर सभा में बहुत कुछ कहा गया है। यह सच है कि अल्पसंख्यक-उपसमिति की सिफारिश पर गत वर्ष इस सभा ने कई सम्प्रदायों के लिए संरक्षित स्थान का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था। उस समय भी मैं इसके विरोध में थी और आज मैं फिर कहती हूं

कि संयुक्त निर्वाचन के इस नवीन ढांचे में किसी भी सम्प्रदाय के लिए संरक्षित स्थान देना बिल्कुल व्यर्थ है। हमें बहुसंख्यक सम्प्रदाय को सद्भावना पर निर्भर करना ही होगा। इसलिए मुसलमानों की ओर से बोलते हुए मैं कहूंगी कि मेरी समझ से संरक्षित स्थान की मांग करना बिल्कुल बेमतलब है। पर डा. अम्बेडकर के इस कथन से मैं अवश्य सहमत हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी भी सम्प्रदाय के विरुद्ध कोई भेदभाव न बरते और इस कर्त्तव्य का उसे ज्ञान होना चाहिए। श्रीमान्, अगर यह सिद्धान्त—बहुसंख्यक सम्प्रदाय को किसी अल्पसंख्यक के विरुद्ध कोई भेद भाव न बरतना चाहिए—स्वीकार कर लिया जाये, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, हम एक भी संरक्षित स्थान नहीं मांगेंगे। हम यह समझते हैं कि हमारे हितों में तथा बहुसंख्यक सम्प्रदाय के हितों में कोई भेद नहीं है और वे दोनों ही समान है और हम यह आशा करते हैं कि बहुसंख्यक वर्ग सभी अल्पसंख्यकों के प्रति उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा। किन्तु, जैसा कि कई माननीय सदस्यों ने अपने भाषणों में कहा है, नौकरियों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों को अवश्य ही संरक्षण मिलना चाहिए और मुझे आशा है कि जब हम इस प्रश्न पर आयेंगे, तो सभा इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी।

दूसरा प्रश्न जिस पर सभा में बहुत वाद-विवाद हो रहा है, वह है भाषा का प्रश्न। यह प्रश्न स्वभावतः एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जो भी हो हमें इस सम्बन्ध में एक उपाय निकालना ही होगा, जो देशवासियों को सर्वाधिक ग्राह्य हो। यह सच है कि ऐसी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिए जो देश भर में अधिक बोली और समझी जाती हो और इस सम्बन्ध में मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकती कि हिन्दी ही वह भाषा है, जिसे अधिकांश देशवासी बोलते और समझते हैं। (*प्रशंसा सूचक ध्वनि*) किन्तु 'हिन्दी' शब्द की जो व्याख्या आज बहुमत वाला वर्ग करता है वह गलत है। यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई बड़ा भेद नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार करेगा कि जो भाषा देश में आज बोली जाती है, चाहे मुसलमानों द्वारा हो या हिन्दुओं द्वारा, वह उस भाषा से बिल्कुल ही भिन्न है, जिसे हिन्दी के समर्थक हिन्दी कहते हैं और जिसके लिए कि वे इतनी वकालत कर रहे हैं। ये लोग जिस भाषा का पक्ष प्रतिपादन कर रहे हैं वह है संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, जिसे देश का केवल एक छोटा सा वर्ग

[बेगम ऐज़ाज़ रसूल]

ही समझ पाता है। अगर हम गांवों की ओर देखें तो मालूम होगा कि जो भाषा देहातों में बोली जाती है, वह यहां की तथाकथित हिन्दी से सर्वथा भिन्न है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मैं नहीं समझती कि यहां के चार करोड़ मुसलमानों को यह कहना ठीक होगा कि वे तुरन्त अपनी भाषा बदल दें। इस बात से तो मैं सहमत हूं कि देवनागरी लिपि में हिन्दी हमें सीखनी होगी, किन्तु इस परिवर्तन को अपनाने के लिए हमें कुछ समय अवश्य मिलना चाहिए। आपके लिए यह बहुत ही अनुचित बात होगी कि हमें आप यह आदेश दें कि हम राज्य के सभी काम तथा विधान-मण्डल का सारा कामकाज एकाएक एक ऐसी भाषा में करने लग जाये जिसे हम अच्छी तरह नहीं जानते हैं इसलिए मेरी समझ से यह एक ऐसा विषय है जिस पर हमें शान्त-चित्त से तथा गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। आखिर यह कोई ऐसा प्रश्न तो है नहीं जिस पर एकाएक कोई निर्णय कर बैठे अथवा उत्तेजना और भावुकता के प्रवाह में कोई फैसला कर लें। हमें देश की आवश्यकताओं को इस सम्बन्ध में ध्यान में रखना होगा। हमारे राष्ट्रपिता ने अपने आखिरी वक्त तक दोनों लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी को ही अपनाने की हमें राय दी और यह कहा कि यही एकमात्र भाषा है, जो हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है और जिसे देश की जनता स्वीकार कर सकती है। इसलिए मैं तो यही सिफारिश करूंगी कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी ही अन्ततोगत्वा राष्ट्र-भाषा होगी, पर इस सम्बन्ध में हमें एक मध्यवर्ती समय निश्चित कर देना चाहिए—लगभग 15 वर्षों का समय रख लीजिए—और इस बीच दोनों लिपियों में लिखी हिन्दुस्तानी ही देश की भाषा मानी जाये।

अन्त में, श्रीमान्, मेरा यही कहना है कि विधान में हम चाहे जो भी बातें रखे, पर हमें सदा यही ध्यान में रखना चाहिए कि विधान ऐसा हो कि हमारा देश सशक्त और सम्पन्न हो और देशवासियों को सुख-समृद्धि प्राप्त करने का समान अवसर प्राप्त हो सके, ताकि यह देश विश्व के अन्य देशों का नेतृत्व कर सके और उन्हें शान्ति और समुन्नति की ओर अग्रसर कर सके।

***डा. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी कुछ दिन हुए कि हमारे कानून मंत्री एवं मसौदा-समिति के अध्यक्ष डा. बी.आर. अम्बेडकर

ने इस सभा के समक्ष विधान का मसौदा उपस्थित किया। इन चन्द दिनों के अन्दर सभा के कई सदस्यों ने इस मसौदे की तीव्र आलोचना की है। ऐसे कुछ सदस्य अवश्य है जिन्होंने यह बात कही है कि इस सभा को यह अधिकार और क्षमता ही नहीं प्राप्त है कि वह इस मसौदा को स्वीकार करे। इन चन्द सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों ने इस सभा की एतीद्धषयिणी सत्ता को स्वीकार किया है। इन लोगों ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तनों के साथ इस विधान को स्वीकार किया है और इसे काम शुरू करने के लिए समुचित माना है। एक विशेष और सन्तोषप्रद बात, जो विधान में हम पाते हैं, वह है समस्त देश में एक नागरिकता की व्यवस्था। जैसा कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने बताया है, उस दशा में अमेरिकन व्यवस्था को अग्राह्य करके विधान में समस्त देश के लिए एक नागरिकता की व्यवस्था रखी है। आज जब चारों ओर प्रान्तीयता का बोलबाला है, प्रत्येक प्रान्त अपने पड़ौसी प्रान्त को नुकसान पहुंचा कर भी अपना हित साधन करना चाहता है और हमने पड़ौसी प्रान्तों की सहानुभूति और सद्भावना खो रखी है, समस्त देश के लिए यह एक नागरिकता की व्यवस्था वस्तुतः बड़ी ही सन्तोषप्रद है। पश्चिमी बंगाल का सदस्य होने के नाते मुझे यह सोचकर परम हर्ष होता है कि अब के विधान पास हो जाने के बाद सम्पूर्ण देश में एक नागरिकता लागू हो जायेगी और सभी देशवासियों को सर्वत्र समान अधिकार और सुविधाएं प्राप्त होंगी, जिससे हमारे पड़ौसी प्रान्तों का दरवाजा हमारे लिए अब खुल जायेगा, ताकि पूर्वी पाकिस्तान से आए हुए हमारे दुखी भाइयों को वहां गुजर-बसर करने की सुविधा प्राप्त हो सके।

अल्पसंख्यक समस्या के सम्बन्ध में एक बात और मैं कहना चाहता हूं। विधान में अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए जो व्यवस्थाएं रखी गई हैं, उनके कारण कुछ लोग आकृष्ट हैं। कोई भी व्यक्ति यह बात नहीं अस्वीकार कर सकता कि देश में कई अल्पसंख्यक वर्ग वर्तमान है। इस तथ्य को हम चाहे जितना भी अस्वीकार क्यों न करें पर इससे ये अल्पसंख्यक विलुप्त तो हो नहीं जायेंगे। गणतंत्र का अर्थ ही है बहुमत का शासन, जैसा कि आप भी जानते हैं श्रीमान्। बहुसंख्यक वर्ग का ही सदा शासन रहता है और अल्पसंख्यकों को उनकी कृपा पर निर्भर करना पड़ता है। बहुसंख्यक वर्ग के लिए जरूरी नहीं है कि वह अल्पसंख्यकों से डरे। हां, बहुसंख्यक वर्ग का यह कर्त्तव्य अवश्य है कि वह अल्पसंख्यकों की रक्षा करे, जिससे कि उनके हृदयों में सुरक्षा और विश्वास का भाव उत्पन्न हो। मेरी समझ से तो आज भारत के अल्पसंख्यक-वर्ग बहुसंख्यक सम्प्रदाय से जो

[डा. मनमोहन दास]

पाना चाहते हैं ओर जिसके वे वस्तुतः पात्र हैं, वह यह है कि बहुसंख्यक वर्ग उनकी समस्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्वक विचार करें और उनसे विरोध-भाव न रखें।

इस सभा के ख्यातनामा सदस्य ने यहां एक बड़ा ही युक्त प्रश्न उठाया है। आपने कहा है कि भारतीय विधान के मसौदे में विश्व के अन्य देशों के विधानों से तो बहुत सी बातें ली गई है, पर स्वयं अपने इस प्राचीन देश से, अपनी संस्कृति से कुछ भी नहीं लिया गया है। उनका अभिप्राय है कि मसौदे में यहां की पुरानी ग्राम-पंचायत-पद्धति को स्थान नहीं दिया गया है। हमारा राष्ट्र एक भावुक और आदर्श प्रधान राष्ट्र है और सुतरां हर प्राचीन एवं अतीत की वस्तु की ओर हमारा स्वाभाविक झुकाव और प्रेम होता है। इस सभा के कई सदस्यों ने मसौदा-समिति के अध्यक्ष की आलोचना इस बात के लिए की है कि उन्होंने मसौदे में यहां की ग्राम-पंचायत पद्धति को स्थान नहीं दिया है। उन्होंने यही मान रखा है कि यह विधान एक व्यक्ति की कृति है और इस बात को वे भूल गये हैं कि विधान निर्माण के लिए मसौदा-समिति नाम का एक निकाय बना है। मेरी समझ से यह एक आश्चर्य की बात है कि मसौदा-समिति और उसके अध्यक्ष दोनों ही ग्राम-पंचायत को विधान में रखना भूल गये हों और इस बात की ओर उनकी दृष्टि ही न गई हो। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि मसौदा-समिति ने जानबूझकर यह बात प्रांतीय विधान-मण्डलों पर छोड़ दी है कि इस सम्बन्ध में वे जैसा चाहे कानून बनायें।

वस्तुतः कई प्रान्तों में तो इस दिशा में कानून बनाने का काम शुरू हो गया है। मैं यहां संयुक्तप्रान्त की ग्राम-पंचायत बिल की ओर संकेत कर रहा हूं। विधान में ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे प्रान्तों पर इस दिशा में कानून बनाने पर कोई रोक लगती हो। यदि हमारे प्रान्तीय विधायक ऐसा समझते हैं कि ग्राम-पंचायत-प्रणाली से देश को बहुत लाभ होगा तो अपने-अपने विधान-मण्डलों में वे उसके लिए कानून पास कर सकते हैं। मेरा ऐसा ख्याल है, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में आलोचना करते-करते वक्ताओं ने कहीं-कहीं मसौदा-समिति के अध्यक्ष को कुवचन तक कह

डाले हैं और यह बात बिल्कुल ही अनावश्यक अनुचित अशोभनीय, बल्कि मैं तो कहूंगा कि क्षुद्रतासूचक है।

उन सभी माननीय मित्रों को, जो ग्राम-पंचायत के इतने बड़े हामी हो रहे हैं, बतौर चेतावनी के मैं चन्द शब्द कहूंगा। जब तक कि गांवों के लोग शिक्षित नहीं हो जाते, राजनीतिक चेतना उनमें नहीं आ जाती, अपने नागरिक अधिकारों और कर्त्तव्यों का उन्हें ज्ञान नहीं हो जाता, इस ग्राम-पंचायत-प्रणाली को चलाने से लाभ के बदले हमें हानि ही अधिक होगी। ग्राम-पंचायत की व्याख्या यहां शताब्दियों तक रही है और अभी हाल में भी वह यहां वर्तमान थी पर इससे हमारे देश को क्या लाभ पहुंचा है? सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक समुत्थान में इससे हमें क्या सहायता मिली है? मैं जानता हूं कि यह कहकर मैं लोगों का आक्रोश मोल ले रहा हूं और इसके कारण लोग हमारी तीव्र आलोचना करेंगे। यदि ग्रामवासियों को शिक्षित बनाने से पहले ही आप यह प्रणाली चालू कर देते हैं तो श्रीमान्, मेरा ऐसा ख्याल है कि इससे यही होगा कि गांवों के जो प्रभावशाली लोग हैं वही सारे अधिकारों और सुविधाओं को हड़प जायेंगे और अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही उनका प्रयोग करेंगे। गांवों के जमींदार, ताल्लुकेदार, महाजन और ब्याज पर रुपया देने वाले लोग, इस पद्धति से लाभ उठाकर गांव के गरीब, कम शिक्षित और कम सुसंस्कृत लोगों का शोषण करने लग जायेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूं, जिसे मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने मसौदे के विचारार्थ उपस्थित किया है। सभा के समक्ष अपना मत व्यक्त करने का आपने मुझे अवसर दिया, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, कोई भी व्यक्ति, चाहे इस महती सभा में अथवा इसके बाहर मसौदा-समिति के प्रयास और सेवाओं की महत्ता को, जिसने कि इस मसौदे को सभा के समक्ष विचार एवं स्वीकृति के लिए उपस्थित किया है, कम नहीं कर सकता। आने वाली पीढ़ी इस बात पर गर्व करेगी कि मसौदा-समिति ने विश्व भर के प्रचलित सभी विधानों का मंथन किया और उनमें से उन प्रावधानों को अपने विधान में स्थान दिया जो कि हमारे इस महादेश के समुत्थान के लिए अपेक्षित हैं।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

विधान की विभिन्न धाराओं पर विचार करते समय हमें यह देखना चाहिए कि इससे उन लोगों को जो कि पीड़ित है, गरीब है और उन सम्प्रदायों को जिनकी अब तक सदा उपेक्षा की गई थी, सुरक्षा प्राप्त होती है कि नहीं, उनको इनसे नागरिकता सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त होती हैं या नहीं। विधान को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें दो नई बातें रखी गई हैं जो विश्व के किसी भी देश के विधान में नहीं हैं। पहली बात यह है कि विधान में अस्पृश्यता की समाप्ति कर दी गई है। हरिजन सम्प्रदाय का सदस्य होने के नाते मैं इस प्रावधान का अभिनन्दन करता हूं। इस अस्पृश्यता ने राष्ट्र की आत्मा का ही हनन कर रखा था और हिन्दू सम्प्रदाय की सभी महत्ताओं और गौरवों के बावजूद भी समस्त विश्व हमें सन्देह की दृष्टि से देखता था। मैं प्रस्तुत प्रावधान का स्वागत करता हूं। इस प्रावधान से बहुसंख्यक सम्प्रदाय की यह महत्ता प्रकट होती है कि उन्होंने यह समझ लिया कि अस्पृश्यता एक ऐसा कीटाणु है जो राष्ट्र के गौरव को, स्वाभिमान को ही समाप्त कर देगा यह आभास मिलते ही उन्होंने इस दूषित परम्परा को समाप्त करने का निश्चय कर लिया है। आज भारत में अभी ऐसे लोग वर्तमान हैं जो कहते हैं कि अस्पृश्यता के विनाश के लिए देश में काफी प्रचार किया गया है और इस सम्बन्ध में अब और प्रचार की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं सच कहता हूं, मेरा ऐसा ख्याल है कि अगर आप ग्राम्य क्षेत्रों में जायें तो अभी भी आप यहां अस्पृश्यता को प्रचण्ड रूप में वर्तमान पायेंगे। सुतरां अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी जो प्रावधान विधान में रखा गया है, पर अभिनन्दनीय है।

विधान की दूसरी विशेषता यह है कि बेगार प्रथा का इसमें अन्त कर दिया गया है। अगर गांवों में किसी आम काम के लिये मज़दूरों की जरूरत होती है तो इन मजदूरों के कामों को करने के लिए ये अभागे हरिजन ही पकड़े जाते हैं। विधान में बेगार प्रथा को उठाने के लिए जो प्रावधान आपने रखा है उससे निश्चय ही आप इस सम्प्रदाय का उत्थान कर रहे हैं, जो अब तक समाज के दायरे से बाहर ही रखा गया था। नियति ने यह काम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को ही दे रखा था कि एक दक्ष कीटाणु-विशेषज्ञ की हैसियत से वह अस्पृश्यता रूपी कीटाणु के विनाशकारी प्रभाव को समझे, जो राष्ट्र के प्राणों का ही क्षय कर रहा था। उन्होंने इस कुप्रथा के विनाश के लिये कतिपय सुझाव हमें दिये और मुझे खुशी है कि मसौदा-समिति ने इस अभागे हरिजन सम्प्रदाय को अस्पृश्यता और

बेगार की मार से बचाने के लिये विधान में ऐसा प्रावधान रख दिया है, जिससे कि इन दोनों ही बुराइयों का अन्त हो जाये।

विधान के मसौदे में उसके रचयिताओं ने कहा है कि अस्पृश्यता का अन्त कानून बनाकर किया जा सकता है। मैं तो कहूंगा कि इस सम्बन्ध में कानून ही काफी नहीं है। इसके लिये विशेष कानून बनाने होंगे। मेरे अपने प्रान्त में विधायकों ने वर्तमान नागरिक अयोग्यताओं को हटाने के लिए सौजन्यपूर्वक एक कानून बनाया था, किन्तु उस पर अमल करते समय स्वयं वहां की सरकार के लिए यह सम्भव नहीं था कि उक्त कानून-द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को वह लागू कर सके। इसलिए मैं कहूंगा कि यदि आप वस्तुतः अस्पृश्यता और बेगार को हटाना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको विशेष कानून बनाने चाहिए।

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में, जो सभी देशवासियों को और विशेषतः यहां के अभागे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को दिए गए हैं, परामर्शदातृ-समिति, अल्पसंख्यक-समिति एवं मूलाधिकार-समिति—इन तीनों ने ही तत्सम्बन्धी सभी प्रावधानों पर विचार करके कई उपायों का अवलम्बन किया है, जिन्हें इस सभा ने स्वीकार किया है।

कुछ वर्ग यह कहते हैं कि स्थान-संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जिन्होंने अभागे अल्पसंख्यकों को दुर्दशा देखी है, उनका ऐसा ख्याल है कि संरक्षण की व्यवस्था होनी ही चाहिए। जैसा कि अल्पसंख्यक-समिति ने स्वीकार किया है और जिसका समर्थन इस सभा ने भी किया है। जहां तक कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का सम्बन्ध है, स्वयं इस सभा की यही सद्दिच्छा है कि संयुक्त निर्वाचन की पद्धति के आधार पर प्रौढ़ मताधिकार लागू किया जाये। निश्चय ही इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि आज की स्थिति में इस सम्प्रदाय के समुत्थान के लिए, जो कि आर्थिक एवं शैक्षिक दोनों ही दृष्टियों से गरीब हैं, यह एक सर्वोत्तम व्यवस्था है। प्रौढ़ मताधिकार को हटाने का प्रयास करना एक महान पातक होगा। अल्संख्यकों के हित-संरक्षण के लिए जो प्रावधान विधान में रखे गये हैं, वह मेरी समझ से अभिनन्दनीय हैं, किन्तु प्रान्तों में अभी भी इन संरक्षण-मूलक प्रावधानों के विरुद्ध लोगों में घोर आक्रोश है। मैं हृदय से ऐसा समझता हूं कि इन प्रावधानों को हर प्रकार प्रभावी बनाना चाहिए।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

ग्रामीणों की खासकर वहां के दीन-हीन कृषकों और मजदूरों की आर्थिक दशा को समुन्नत करने के लिए, मैं देखता हूं कि इस विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं कि गांवों को एक इकाई समझा जाये। अवश्य ही शोषण तथा अन्य कई बातों के कारण गांवों की दशा आज दयनीय है और वे प्रायः बर्बाद से ही हैं। किसी भी विधान-निर्मातृ-सभा का यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह ऐसा प्रावधान बनाये जिससे ग्रामों को शासन-व्यवस्था में समुचित स्थान प्राप्त हो। मनियागर एवं कारनाम आदि ग्राम अधिकारियों की नियुक्ति वंश परम्परा के आधार पर होती है और इससे वही लोग वस्तुतः गांवों के सर्वेसर्वा होते हैं। भारत के प्रान्तों के शासन प्रबन्ध के लिए तो हमने व्यवस्था कर दी है और समाज के शीर्ष स्थानीय वर्गों के लिए विधान बना दिया है, किन्तु यदि हम गांवों के पुनः निर्माण का काम यों ही छोड़ देते हैं, तो मेरा ऐसा ख्याल है कि यह बहुत ही बुरी बात होगी। महात्मा जी भी यही चाहते थे कि गांवों को स्वायत्त-शासन-प्राप्त इकाई बनाई जाये। मुझे विश्वास है कि यह महती सभा इस मसौदे पर विचार करेगी जो उसके सामने उपस्थित किया गया है और इस बात की कोशिश करेगी कि इसमें समुचित सुधार हो, ताकि ग्राम को या कतिपय ग्रामों के एक समूह को स्व-शासन प्राप्त इकाई का रूप दिया जा सके। जिला बोर्डों में या म्युनिसिपल बोर्डों में कहीं भी गांवों या तालुकों के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं। मेरे प्रांत में तो कई परिस्थितियों के कारण जिला बोर्ड के शासन का काम जिलाधीश को ही देखना पड़ता है। इन जिलाधीशों के सर पर पहले से ही इतने जिम्मेदार कामों का बोझ है कि वे स्वयं जिला बोर्ड का काम नहीं देख पाते और इसके लिये एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर देते हैं। ये बोर्ड, जैसा कि वर्तमान स्वरूप है, सर्वप्रिय संस्था नहीं है। मैं ऐसा ख्याल करता हूं कि ग्राम्य-इकाई बनाने पर हमें विचार करना ही चाहिये।

मंत्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में, विधान में प्रधान को पूर्ण अधिकार दिया गया है। यदि आप भारत-शासन अधिनियम, 1935, को देखें तो वहां आप इस आशय का प्रावधान पायेंगे कि गवर्नर या प्रधान अपने मंत्रियों को चुनने में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हकों का भी ख्याल रखेंगे। इस मसौदे में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है। मुझे विश्वास है कि इस मसौदे पर आगे चलकर जब आप विचार करेंगे, तो ऐसा कोई प्रावधान इसमें जरूर रख देंगे जिससे कि

मंत्रि-पदों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हकों का भी ख्याल रखा जाये। श्रीमान्, मेरा ऐसा विश्वास है कि यह एक ऐसा राजनैतिक अधिकार है, जिसके द्वारा इन उपेक्षित सम्प्रदायों को और अच्छी सेवाओं का अवसर प्राप्त हो सकता है। अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में भी धारा 10 में कहा गया है कि पिछड़े हुए सम्प्रदायों का ख्याल रखा जायेगा। किन्तु पिछड़े हुए सम्प्रदायों की सूबेवार सूची अगर आप देखें तो आपको मालूम होगा कि पिछड़ी हुई जातियों का वहां नाम ही नहीं है। मैं समझता हूं कि इसमें अवश्य सुधार होना चाहिए।

अन्त में अब मैं भाषा के प्रश्न की ओर आता हूं। राष्ट्रीय-भाषा के सम्बन्ध में बड़ा जबरदस्त मतभेद है। जहां तक मेरे अपने सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, उसकी 1 प्रतिशत जनसंख्या ने भी हिन्दी या हिन्दुस्तानी को अभी नहीं अपनाया है।

मेरा ऐसा ख्याल है कि श्रीमान्, कि इस महत्ती सभा को इस प्रश्न पर समुचित रूप से विचार करना चाहिये और किसी भी भाषा को किसी प्रान्त, जिला या प्रदेश पर, जहां के लोग उसे नहीं चाहते हैं, जबरदस्ती नहीं लादना चाहिए।

इन कतिपय मन्तव्य के साथ मैं मसौदा-समिति तथा उसके अध्यक्ष का अभिनन्दन करता हूं कि उन्होंने इस सभा के समक्ष यह मसौदा उपस्थित करके एक बड़ी ही सेवा की है और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस मसौदे को स्वीकार करे।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन** (मद्रास: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अब जबकि विधान विचारार्थ हमारे सामने आ गया है, मैं उसके सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करने की अनुमति आपसे चाहती हूं। मसौदा-समिति के योग्य एवं सुवक्ता अध्यक्ष ने नवीन भारतीय गणतंत्र के विधान-निर्माण में प्रशंसनीय रूप से अपना कर्त्तव्य पालन किया है। मेरा ख्याल है कि चाहने पर भी वह उन मुख्य सिद्धांतों के बाहर नहीं जा सकते थे, जिनके आधार पर सत्ता हस्तान्तरित हुई है। इसलिए मेरी समझ से जो भी आलोचना इस सम्बन्ध में उनके विरुद्ध की गई है, वह सर्वथा अशोभनीय और अनुचित है और अगर कोई दोषारोपण की बात है—और मैं समझती हूं कि ऐसी बात है—तो उसका भागी हममें से केवल उन्हीं लोगों को बनाना चाहिए जो यहां उपस्थित हैं, जिन्हें विधान-निर्माण के लिए यहां भेजा गया है और

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

जिन पर यहां की उस असंख्य मूक जनता ने विधान-निर्माण का दायित्व दे रखा है, जिसने स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े कष्ट सहकर हमें यहां बड़ी-बड़ी आशायें लेकर भेजा है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मुझे मसौदे के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं करनी है। मैं तो समझती हूं कि अपने प्रारंभ काल से ही यह विधान-परिषद् विधान-निर्माण के बजाय अन्य बातों में अधिक उत्साह दिखाती रही है। हम रोजाना अपने बड़े-बड़े नेताओं के भाषण सुनते हैं, उनसे बड़े-बड़े आदर्शों और सिद्धांतों की बात सुनते हैं, किन्तु विधान में हम यह देखते हैं कि उन आदर्शों और सिद्धांतों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के नेता हममें विद्यमान है, किन्तु विधान में हम यह पाते हैं कि उनके बड़े-बड़े सिद्धांतों और आदर्शों का कोई उल्लेख ही नहीं है। वस्तुतः यह एक बड़ी ही हास्यास्पद बात है कि हम ऐसा विधान अपने समक्ष उपस्थित पाते हैं और मैं समझती हूं कि स्वयं मसौदा-समिति के सदस्यों ने भी शायद पूरी तरह इसे नहीं पढ़ा है।

इसके सम्बन्ध में यह एक आम आलोचना हुई है कि यह मसौदा भारत-शासन अधिनियम, 1935 ई. की बिल्कुल हूबहू नकल है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं शासन पद्धति की हमें एक देन मिली हुई है, जो परिषदात्मक पद्धति के नाम से विख्यात है। मुसीबत तो यह है कि हमें तब भी इसी पर निर्भर करना पड़ता था और स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद इस विधान के अमल में आने पर अब भी हमें इसी पर निर्भर करना पड़ेगा। ब्रिटिश शासक भारत को केन्द्र और प्रान्तों की दृष्टि से एक इकाई के रूप में रखना चाहते थे और उन्हीं की तरह हमने भी घबराहट और चिन्ता में पड़कर भारत को केन्द्र और प्रान्तों को एक सशक्त इकाई के रूप में रखने की कोशिश की है और शक्ति के इस केन्द्रीकरण के फलस्वरूप यह सारी कठिनाइयां हमारे सामने आई हैं। भारत को एक सशक्त इकाई बनाने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि शक्ति के केन्द्रीकरण द्वारा यह ध्येय पूरा किया जाये और दूसरा रास्ता यह है कि विकेन्द्रीकरण द्वारा हम अपना उद्देश्य सिद्ध करें। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात यह है कि शक्ति का केन्द्रीकरण तभी शक्य है, जब तक कि हम परिषदात्मक शासन-व्यवस्था पर चलें जिसे आज 'जनतंत्रीय व्यवस्था' का आकर्षक नाम दिया जाता है। किन्तु इस मसौदे में ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो गणतंत्रीय हो और विकेन्द्रीकरण का इसमें सर्वथा अभाव है। वस्तुतः यह बड़ी की दयनीय बात है कि हम विधान तो बनाने चले एक महान् देश के लिए, जिसमें तीस कोटि नर-नारी रहते हैं, जिसकी अपनी एक महत्ती संस्कृति है, जिसको

विश्व के वर्त्तमान सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के सिद्धांत और उपदेश प्राप्त हैं, किन्तु विधान हम बना पाए ऐसा जो हमारे लिए बिल्कुल ही विदेशी है। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने जो तर्क उपस्थित किए हैं, वह बिल्कुल ही लचर हैं। उन्होंने कहा है कि विधान बनाने का काम हमने बड़ी देर के बाद हाथ में लिया है। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं ऐसे उदाहरण रख सकती हूं, जिनसे उनके तर्क का थोथापन प्रकट हो जायेगा। मसौदा-समिति की सिफारिश है कि भारतीय संघ का प्रधान राज्य परिषद् (Council of States) के लिए 15 व्यक्तियों को मनोनीत करे। फिर और एक बात कही गई है कि विधान-निर्माण का कार्यकाल चार वर्षों से ज्यादा होना चाहिए। मसौदे में एक और बात गलत नाम से रखी गई है और वह है गवर्नरों के चुनाव या मनोनयन के सम्बन्ध में। समिति का ऐसा ख्याल है कि गवर्नर तथा प्रधानमंत्री, जो कि विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा, ये दोनों ही अगर जनता द्वारा निर्वाचित होंगे तो इन दोनों के बीच संघर्ष होने की सम्भावना रहेगी। किन्तु इस बुराई के लिए जो इलाज उन्होंने सुझाया है, वह तो खुद इस बुराई से भी बदतर है। इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था सुझाई गई है कि चार नामों की तालिका होगी, जिसमें से एक को प्रधान गवर्नर चुन लेगा। अब मान लीजिए कि कांग्रेस का अध्यक्ष प्रधान पद पर आरूढ़ है और प्रान्त में समाजवादी दल का बहुमत है। समाजवादी पार्टी तीन नाम तो अपने दल के लोगों के रखती है और एक नाम कांग्रेस पार्टी के आदमी का। ऐसी स्थिति में प्रधान क्या करेगा? निश्चय ही वह कांग्रेस पार्टी के व्यक्ति को ही गवर्नर चुनेगा और फिर इससे झगड़ा पैदा ही होगा। हम यह देखते हैं कि गवर्नर को नियुक्त करने की बात भारत-शासन अधिनियम सन् 1935, से ही ली गई है और इससे यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम से एक विराम या अर्धविराम लेना भी हमने नहीं छोड़ा है।

और फिर मेरी समझ में यह बात नहीं आती है, श्रीमान्, कि नवीन विधान में केन्द्र-शासित क्षेत्रों की व्यवस्था क्यों रखी जाये। अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों को केवल इसलिए रखा था कि देश में वह अपना सैन्य शासन रख सकें। पर मैं नहीं समझ पाती कि आखिर हम अपने वर्तमान विधान में इन्हें क्यों रखें? अच्छा होगा कि इन क्षेत्रों को पास के प्रान्तों में मिला दिया जाये और ऐसा करने में हमारा कोई नुकसान नहीं है। विधान-निर्माताओं ने यह खण्ड विधान में रख दिया है, और इसलिए हमें इस पर विचार करना पड़ रहा है।

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

अब चन्द शब्द मैं समाजवादी दल की, उस मांग के सम्बन्ध में कहूंगी, जिसको उन्होंने यहां इस समय उपस्थित किया है। समाजवादी दल को देश में आज द्वितीय स्थान प्राप्त है और वह विपक्षी दल के रूप में अधिकारारूढ़ दल के सामने आना चाहता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि देश में इस दल की धाक है और इसमें बहुसंख्यक लोग अनुगामी है। उन्होंने इस बात की घोषणा भी कर रखी है कि भविष्य में वह एक वैध विपक्षी दल के रूप में रहना चाहते हैं। किन्तु मैं इतना अवश्य कहूंगी कि मैं उनकी इस मांग से सहमत नहीं हूं कि इस विधान-परिषद् को समाप्त कर दिया जाये। इस सम्बन्ध में मुझे एक सुझाव रखना है। वर्तमान विधान प्रभावी होने पर आम चुनाव के समय जनता के समक्ष आयेगा। उस समय इसी बात पर चुनाव लड़ लिया जाये कि विधान मंजूर हो या रद्द किया जाये। यदि उस समय निर्वाचक बहुमत से उसे स्वीकार कर लें, तो हम समझ लें कि समस्त देश ने इसे मान लिया है और यदि बहुमत द्वारा यह अस्वीकृत हो जाये, तो हम ऐसा मान लें कि सारे देश ने इसे अस्वीकार किया है। फिर अधिकारारूढ़ होने वाला दल तथा तत्पश्चात् निर्मित विधान-मण्डल विधान पर विचार कर उसमें आवश्यक संशोधन कर सकते हैं, मैं समझती हूं, श्रीमान्, कि कांग्रेस पार्टी, जो आज अधिकारारूढ़ है, इस नीति को स्वीकार करेगी और ऐसा करेगी कि विधान-निर्माण के सम्बन्ध में अप्रजातंत्रीय होने का आरोप हम पर न लगाया जा सके।

श्री देशबन्धु गुप्त (दिल्ली): उपसभापति महादेय, मुझे अफसोस है कि मैं ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन डा. अम्बेडकर साहब को, जिन्हें हाउस के मुख्तलिफ मैम्बरान ने बधाई और मुबारकबाद दी है, मुबारकबाद नहीं दे सकता। मैंने ड्राफ्टिंग कमेटी की सिफारिशात का वह हिस्सा, जिसका चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज से ताल्लुक है, बड़े गौर से पढ़ा है। मैं अपने रिमार्क इस हिस्से तक महदूद रखना चाहता हूं कि हाउस के मैम्बरान इस हिस्से को जरा गौर से पढ़ें। जनाब सदर, आपको मालूम होगा कि चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज का मसला जिस वक्त इससे पेश्तर कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली के सामने आया था, उस वक्त भी ड्राफ्टिंग कमेटी ने जो सिफारिश की थी, वह यह थी कि चीफ कमिश्नर प्राविन्सेज का तरीका हुकूमत वही रहे, जो अब तक चला आया है। हिन्दुस्तान की दुनियां बदल गई, मुल्क को स्वराज्य मिल गया, लेकिन देहली और दूसरे चीफ कमिश्नर्स

प्राविन्सेज की जितनी बड़ी आबादी है, उनकी एडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज नहीं हुई। जिस वक्त इस किस्म की सिफारिश हमारे सामने कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली में आई, तो चीफ़ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के नुमाइन्दों ने अपनी आवाज बुलन्द की और कान्स्टीट्युयेंट असेम्बली ने एक स्पेशल सब-कमेटी मुकर्रर की, जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह चीफ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के लिए वहां के हालात के मुताबिक कान्स्टीट्यूशन मुरत्तब करें। जनाब सदर, इस स्पेशल सब-कमेटी के चेयरमैन हमारे आज के इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रेसीडेंट-एलेक्ट और इस हाउस के सीनियर मेम्बर डा. पट्टाभि सीतारमैया थे। इस स्पेशल सब-कमेटी को हमारे कान्स्टीट्यूशनल-पंडित श्री गोपालस्वामी आयंगर जैसे शख्स की खिदमात हासिल थी। इनके अलावा हमारे दूसरे कान्स्टीट्यूशनल-पंडित श्री संतानम् भी इसके मेम्बर थे, जो इसमें इतनी गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं। (*हंसी*) (Do you doubt it?) उन्होंने भी इसमें दिलचस्पी ली और उसने जो सिफारिशात की, वह सिफारिशात मुत्तफ़िका सिफारिशात थी। इस कमेटी ने कई मीटिंगें की, तमाम मसलों पर गौर किया, इसके तमाम पहलुओं को अच्छी तरह से देखा। इसने हुकूमत की मजबूरियों को भी सामने रखा, जिनकी वजह से हुकूमत के चीफ़ कमिश्नर्स प्राविन्सेज के साथ इतनी बेऐतनाई का सलूक करना मुनासिब समझा था। चुनांचे इस सब बातों का लिहाज करके सिफारिशात की गई और उनमें साफ तौर पर यह कह दिया गया था कि अगरचे यहां की जनता की आवाज़ तो यही है कि इन्हें भी इतना ही अधिकार प्राप्त हो, जो कि दूसरे सूबों की जनता को है, और कोई वजह नहीं है कि ऐसा क्यों न हो, लेकिन फिर भी इस बात का लिहाज रखते हुए कि देहली की एक विशेष व्यवस्था है, इन्होंने सिफारिश की कि देहली में और दूसरे सूबों में एक लैफ्टिनेंट गवर्नर प्राविन्स बनाया जाये और इस लैफ्टिनेंट गवर्नर की तकर्रुरी के बारे में इस बात की रियायत रखी जाये कि सैन्ट्रल का इस पर कन्ट्रोल हो। चुनांचे बजाय इसके कि लैफ्टिनेंट गवर्नर चुनकर आयें, वह तजवीज़ की गई कि रिपब्लिक का प्रेसीडेंट लैफ्टिनेट गवर्नर को नामज़द कर दे।

दूसरी एहतियात इसमें यह रखी गई है कि दूसरे प्राविन्सेज़ की तरह नहीं बल्कि उनसे अलहदा इन प्राविन्सेज़ का कान्स्टीट्यूशन यह हो कि प्राविंशियल और सेन्ट्रल लिस्ट कन्करेन्ट हों, ताकि सेन्टर को पूरा अख्तियार रहे कि प्राविन्स के पास किए हुए जिस लेजिस्लेशन में चाहे मदाखिलत कर सके, उस प्राविन्स का अपना एक्सक्लुसिव जूरिस्डिक्शन न हो।

[श्री देशबन्धु गुप्त]

यह भी कह दिया गया है कि उसका बजट भी सेन्टर के सामने आये और प्रेसीडेन्ट को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार हो। यही नहीं, एक एहतियात और रखी गई है और वह यह है कि लैफ्टिनेंट गवर्नर और मिनिस्टर्स के दर्मियान अगर किसी मामले में इख्तलाफ राय हो, तो यह मामला भी प्रेसीडेंट को रैफर किया जाये और उस मामले में प्रेसीडेंट की राय कतई समझी जाये। मैं नहीं समझता कि जब कमेटी ने इतने गौर-खौज के बाद ऐसी सिफारिशात की कि जिनमें सेंटर के अधिकार का ज्यादा से ज्यादा लिहाज़ रखा गया, उसके बाद भी ड्राफ्टिंग कमेटी ने क्यों यह जरूरी समझा कि चन्द लाइनें लिखकर इस मसले को खत्म कर दिया जाये और यह कह देना काफी समझा कि चूंकि देहली एक कैपिटल टाउन है इसलिए यहां लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन नहीं हो सकता। ड्राफ्टिग कमेटी ने बजाय इसके कि वह स्पेशल कमेटी की मुत्तफिका सिफारिशात को वज़न देती, या कोई और रास्ता निकालने की कोशिश करती, मालूम यह होता है कि उसने अपने प्रिजुडिसेज़ से काम लिया और यह समझा कि यह कोई ऐसा मसला नहीं है जिस पर गौर किया जाये। ऐसा मालूम होता है कि यह हज़रात समझे थे कि स्पेशल कमेटी तो देहली और दूसरे चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज़ के लोगों का दिल बहलाव करने के लिए बना दी गई थी, इसलिए उसकी सिफारिशात रद्दी की टोकरी में डाल दी गईं। मैं पूछना चाहता हूं कि इस कांस्टीट्यूएंट असेम्बली के इतने मेम्बरान अपने वक्त का इतना बड़ा हिस्सा देहली में गुज़ारते हैं या वह यह अन्दाज़ नहीं कर सकते हैं कि देहली में बीस लाख की आबादी के होते हुए यह मुनासिब है या नहीं कि उनकी भी अपने ऐडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ हो। क्या यह अच्छा मालूम होता है कि देहली में अगर आज एक छोटी सी हड़ताल हो जाये कि उसे रोकने के लिए हमारे होम मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर को भाग-दौड़ करनी पड़े? क्या यह मुनासिब है कि नये तरीके-हुकूमत में देहली के छोटे-छोटे मामलात भी कैबिनेट मिनिस्टर तय किया करें और देहली के लोगों की एडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ न हो? कहा गया है कि आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं होता, इसलिए यह हिन्दुस्तान में भी नहीं हो सकता। मैं तो यह समझा था कि सभी दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशन्स से फायदा उठाने की कोशिश करनी चाहिए और मक्खी पर मक्खी नहीं मारनी चाहिए। आस्ट्रेलिया की मिसाल दी गई है, लेकिन वहां के कैपिटल टाउन की आबादी आठ हज़ार थी और सन् 1944 में उसका अन्दाज़ा तेरह हज़ार का था। देहली के नरेला टाउन से भी उसकी आबादी

कम थी। अगर आप आस्ट्रेलिया से मुकाबला करना चाहते हैं तो बड़ी खुशी से नरेला को अपना कैपिटल बना लीजिये और उसका अधिकार अपने हाथ में ले लीजिये। देहली वालों को कोई ऐतराज न होगा। दूसरी मिसाल वाशिंगटन की दी गई है। यह मिसाल एक हद तक मुनासिब हो सकती है। लेकिन मैं समझता हूं कि देहली और वाशिंगटन एक ही तराजू में नहीं तोले जा सकते। देहली एक कमर्शियल और इन्डस्ट्रियल टाउन है और देहली की आबादी बीस लाख है, जब कि वार्शिगटन की आबादी आठ लाख के करीब है। वाशिंगटन खास तौर पर राजधानी के लिए बनाया गया है। देहली सदियों से, बल्कि हज़ारों साल से चली आती है। यहां की एक खास तहज़ीव व तमीज़ है और देहली की आबादी की खास जरूरियात हैं। मैं समझता हूं कि देहली वालों के साथ यह कितनी बड़ी बेइन्साफी की जा रही है कि आज चन्द सतरों में यह कहकर इस सारे मसले को खत्म कर दिया जाता है कि चूंकि यूनाइटेड स्टेट्स में ऐसा नहीं होता है और आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं होता है, इसलिए देहली में भी कुछ नहीं किया जा सकता है। मैं पूछता हूं कि क्या मास्को का सेपरेट प्राविन्स नहीं है और क्या उसका अपना प्राविंशियल ऐडमिनिस्ट्रेशन नहीं है? अगर मास्को U.S.S.R. की राजधानी होते हुए एक सेपरेट ऐडमिनिस्ट्रेशन रख सकता है, तो देहली में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? क्या यूनियन आफ साउथ अफ्रीका में चार अलग-अलग प्राविंसेज़ नहीं हैं? और क्या यह वाकया नहीं है कि वहां कि राजधानी भी एक सूबे की राजधानी है? फिर क्यों हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं किया जा सकता? हमारे सामने सिर्फ दो मिसालें रख दी गई हैं और उनमें से भी एक मिसाल ऐसी जगह की है, जिसकी आबादी आठ हज़ार है। मैं बड़े अदब से पूछना चाहता हूं कि आस्ट्रेलिया की राजधानी और देहली का क्या मुकाबला हो सकता है? क्या यह बेइन्साफी नहीं है कि एक आठ हज़ार के टाउन का मुकाबला करके देहली के केस को एक मिनट में खत्म कर दिया जाता है? मैं नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूं कि अगर आज यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली भी, तो जनता की प्रतिनिधि है, जनता की आवाज़ को नहीं सुनती तो उसे मजबूर होकर अपनी आवाज़ सुनाने का और कोई तरीका अख्तियार करना होगा, ताकि वह मेम्बरान को एक खास तरीके पर अपनी आवाज़ सुना सकें। देहली के कोने-कोने से सन् 1927 से यह आवाज़ बुलन्द की जा रही है कि देहली का एडमिनिस्ट्रेशन अलहदा होना चाहिए। आज देहली की सूबा कांग्रेस कमेटी यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी हैं प्राविंशियल पोलिटिकल कान्फ्रेंस भी यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी है। चीफ़ कमिश्नर्स ऐडवाइज़री कौंसिल

[श्री देशबन्धु गुप्त]

यह रेज़ोल्यूशन पास कर चुकी है। देहली की म्युनिसिपैलिटी यह रेजोल्यूशन पास कर चुकी है। सैकड़ों जलसों में यह रेज़ोल्यूशन पास हो चुका है। लेकिन हमारे ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन के मेम्बरान ने इस बात की परवाह नहीं की कि इसकी तरफ़ जरा भी ध्यान दिया जाये। मैं समझता हूं कि यह बड़ी भारी बेइन्साफ़ी है। इससे बढ़कर कोई बेइन्साफी नहीं हो सकती कि देहली के रहने वालों को, जो कि हिन्दुस्तान का केन्द्र है, अपने ऐडमिनिस्ट्रेशन में किसी आवाज़ का मौका न दिया जायें। कह दिया जाता है कि कुछ लोग देहली में ख्वाहां हैं कि वह गवर्नर बन जायें, कुछ मिनिस्टर बनने के मुश्ताक हैं। मैं पूछता हूं कि एक तरफ तो मेरे लायक दोस्त माइनारिटीज़ के हकूक के इतने बड़े अलमबरदार हैं। अगर माइनारिटीज़ की कोई छोटी सी भी बात हो तो डा. अम्बेडकर की फौरी तवज्जह उसकी तरफ जाती है। लेकिन इस छोटे से प्राविंस की तरफ उनका ध्यान नहीं गया। उन्हें कम अज़ कम उसे एक माइनारिटी प्राविंस समझकर कुछ मुरव्वत बरतनी चाहिए थी। आज भी जब तक रिलीजस माइनारिटी का सवाल हमारे सामने आता है, जिसकी तादाद 30-35 लाख है, वह मामला कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के सामने आता है और तमाम नेताओं की तवज्जह उसकी तरफ खींची जाती है और उसकी सारी ताकत उसे हल करने में लगी होती है। मगर देहली की तरफ से सब लापरवाही बरतते हैं। यह बेइन्साफी नहीं है कि बीस लाख की आबादी कोई चीज़ नहीं है? आज हमारे छः लाख भाई वैस्ट पंजाब से तबाह-हाल होकर देहली आये हैं। देहली ने उनको पनाह दी। देहली ने उन्हें अपनाया। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली यह चाहती है कि देहली में जो यह छः लाख आदमी आये हैं उन्हें एक और सज़ा यह मिले कि उन्हें डीफ्रैंचाइज कर दिया जाये? यह तो बड़ा भारी अन्याय होगा। अगर आप चाहते यह हैं कि देहली की राजधानी होने के कारण ज्यादा हिफ़ाज़त की जाये तो आप खुशी से ऐसा करें! देहली वाले इस खिदमत के लिए हाज़िर हैं। हमने पहले ही जो सिफारिशात आपके सामने रखी हैं, उनमें आपको वसीय अख्तियारात दे दिए हैं और फिर आपका इसमें बिगड़ता क्या है, अगर आप देहली को एक छोटी सी लेजिस्लेचर कौंसिल दे देते हैं, और चन्द मिनिस्टर्स मुकर्रर करते हैं? आपको हर वक्त यह पूरा अधिकार होगा कि आप जब चाहें उसे सस्पेंड कर दें। उस स्पेशल कमेटी ने यह सब अधिकार खुद ही प्रेसीडेंट को दे दिए हैं। इस पर भी बजाय इसके

कि एक तजरुबा किया जाये जो कि एक सही कदम होगा, हमें बताया जाता है कि तजरुबा करने की भी जरूरत नहीं है। प्रेजीडेंट को अख्तियार है अगर कभी कुछ मुनासिब होगा तो कर दिया जायेगा। इस पर तुर्रा यह है कि कहा जाता है कि यह इस मसले को हल करने का एक कांम्प्रिहेंसिव तरीका है। जनाब सदर, मैं बड़ी नम्रता से आपके जरिये कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के मेम्बरान से प्रार्थना करूंगा कि वह इस मसले पर संजीदगी से गौर करें और यह अनुभव करें कि देहली की जनता की आवाज़ एक जबर्दस्त आवाज़ है और उनकी शिकायत और मांग बिल्कुल जायज़ है।

अजमेर-मेरवाड़ा के लिए भी यह सवाल हो सकता है, कुर्ग के लिए भी हो सकता है। लेकिन अग़लब यह है कि कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा अपने पड़ौसी प्रदेशों में शामिल हो जाये और उन्हें वह सारे अधिकार प्राप्त हो जायें, जो एक आटोनोमस प्राविन्स को होते हैं। लेकिन देहली के लिए तो यह फतवा सादिर किया जा रहा है कि देहली में और कोई तब्दीली होनेवाली नहीं है। देहली की आबादी पहले छः लाख के करीब थी, अब इसकी आबादी बीस लाख है और अंदाजा किया जाता है कि दस साल तक शायद इस आबादी में दस पन्द्रह लाख का इज़ाफा होगा। यह हिन्दुस्तान का चौथा सबसे बड़ा टाउन है, और इसके लोगों की ऐडमिनिस्ट्रेशन में कोई आवाज़ न हो! आज हालत क्या है? देहली की ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट हमारे सामने नहीं आती। कहा गया है कि चीफ कमिश्नर्स ऐडवाइजरी कौंसिल बना दी गई है। आपको उससे मुत्तमईन होना चाहिए। इसके बारे में सुन लीजिए। आज इसको बने एक साल से ज्यादा हो गया है, लेकिन एक मौके पर भी चीफ कमिश्नर साहब को इस बात की जरूरत महसूस नहीं हुई कि वह देहली के मामलात्, जिनका डे-टू-डे ऐडमिनिस्ट्रेशन से ताल्लुक है, उनके बारे में भी चीफ कमिश्नर्स ऐडवाइज़री कौंसिल के मेम्बरान से मशविरा कर लें। देहली में रायट्स हुए तो सैन्ट्रल कैबिनेट ने एक इमरजैंसी कमेटी बनाई। मि. भाभा इसके चेयरमैन थे। लेकिन देहली की ऐडवाइज़री कौंसिल का इसमें कोई दखल न था। मैं पूछना चाहता हूं कि अगर आज देहली में कोई बरबादी होती है, तबाही होती है या देहली वालों की तरफ से मुश्किलात पैदा की जाती है, तो क्या इसका असर हम पर नहीं पड़ेगा? फिर यह कैसे हो सकता है कि ऐडमिनिस्ट्रेशन में देहली वालों की कोई आवाज़ न हो? देहली के गिर्द नये-नये शहर बसाये जा रहे हैं। नई-नई स्कीमें बनाई जा रही हैं उसमें देहली वालों को कोई पूछता नहीं है। इसमें कोई उनके लिये गुंजाइश नहीं रखी गई है। छोटे से छोटे मामले के लिये देहली वालों

[श्री देशबन्धु गुप्त]

को कभी प्राइम मिनिस्टर के पास जाना पड़ता है, कभी किसी मिनिस्टर के पास और कभी किसी के पास।

अगर बम्बई वाले हुकूमत के अहल हैं, अगर कलकत्ते वाले हुकूमत के अहल हैं और यू.पी. वाले 5 करोड़ की आबादी की हुकूमत चला सकते हैं, तो देहली वालों की भी यह हक हासिल है कि अपने सूबे की हुकूमत का काम चलायें। देहली वाले आजमाइश के वक्त किसी से पीछे नहीं रहे और आज़ादी की लड़ाई में कभी भी किसी से उन्होंने कम हिस्सा नहीं लिया। फिर भी कहा जाता है कि देहली वाले और अजमेर-मेरवाड़ा वाले या जो चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज वाले हैं, उनको कोई अधिकार नहीं दिये जा सकते। मैं कहना चाहता हूं कि यह मामला सहज तरीके से तय नहीं हो सकता।

जनाबवाला, मेरी आवाज़ कमज़ोर है। मैं यहां अकेला हूं और इसलिए मौका भी नहीं मिलता कि देहली वालों की आवाज़ हाउस तक पहुंचा सकूं। आज मुश्किल से यह मौका मिला है कि देहली वालों का केस सामने ला सका; वरना कौन सुनता है नक्कारे में तूती की आवाज़? यही सबसे बड़ी दलील है जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं कि आप जो चाहे हिफ़ाजती तदाबीर अख्तियार करें। हमको कोई ऐतराज़ नहीं है। लेकिन देहली वालों को लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन मिले और उनका स्टेट्स इसी प्रकार का हो जैसा कि दूसरे प्रान्तों का है। अगर आप यह अधिकार देहली वालों को नहीं देंगे, तो यह बड़ा भारी अन्याय होगा और इसका फल अच्छा नहीं होगा।

श्री गोकलभाई डी. भट्ट (बम्बई राज्य): माननीय सभापति जी, आज माइनौरटीज़ के लिये मौका दिया गया है और मैं देशी रियासतों में से आ रहा हूं। देशी रियासतें अभी नाबालिग जैसी है, वह धीरे-धीरे बालिग होती जा रही हैं और मैं इसलिये ही यहां आया हूं कि हम जो बालिग हैं, उनको आप बालिग मान लीजिये और जो रोड़ा अटकाते हैं, उनको कह दीजिये कि यह तो बालिग हैं। हमारे राज्य, राज्य-संघ दूसरे सूबों की तरह के हैं इसी कारण मुझे यह मौका दिया गया है और इसी लिहाज से मैंने मांगा भी था और में शुक्रिया अदा करता हूं, सभापतिजी कि मुझे यह मौका मिला। जब से यह विधान हमारे सामने आया है, तब से मैं इसको बराबर देखता आ रहा हूं। ऐसा नहीं है कि अभी थोड़े ही दिन पहले मैंने इस विधान को देखा हो। जब से मैंने इस विधान को देखा

है, तब से मुझे पता लगा है कि इसमें सही बात है ही नहीं। सही बात यह है कि अगर सही हिस्सा, अच्छा हिस्सा दूसरे विधानों में से हमको मिलता है, तो हमको उसे अपने रिटिन कान्स्टीट्यूशन में लेना चाहिए। और जो विधान बनाने वाली कमेटी है और उसके जो सदर हैं, वह हिम्मत के साथ और एक अधिकार के साथ यह कहते हैं कि हमारा विधान, जो हम बनाने जा रहे हैं, वह विधान सबसे बढ़िया होगा। उनका यह कहना है। क्योंकि, वह उसके अंगभूत है और उन्होंने विधान बनाया है। कुछ मुबारिकबाद तो जरूर देनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने इसको बनाने में बहुत जहमत उठाई है, मेहनत की है और यह धन्यवाद का काम हुआ है क्योंकि कहां-कहां से चुन-चुन करके हिस्से जमा किए हैं यह ऐसा तो नहीं हुआ और ऐसा मैं कहना भी नहीं चाहता हूं कि कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा और भानमती ने कुनबा जोड़ा। ऐसी बात तो मैं नहीं कहना चाहता हूं। इतनी हद तक तो यह नहीं है; लेकिन दिल्ली शहर में हम बैठे हैं, जिसकी हिमायत हमारे देशबन्धुजी कर रहे हैं और जिनको एक अलग स्टेट्स भी मिलना चाहिए। तो इस दिल्ली शहर में भी कई मकानों में, जैसे कि गवर्नर-जनरल का मकान देखते हैं, तो पुराने समय की बात भी आती है, अब की बात भी आती है। इसी रीति से इस विधान में भी मेरा यकीन था कि अलग-अलग देशों के विधान में से अच्छे-अच्छे हिस्से किये जाये। लेकिन जो बात मुझे अखरती थी, पहले से और आज भी अखरती है, वह बात यह है कि दूसरों से तो हिस्से ले लिए जाते हैं, लेकिन हमारे जो पड़े हुए हैं, हमारी आर्यावर्त्त की भूमि में जो चीजें रहती है, हमारे लहू में जो चीज आई हैं, हमारे में जो सत्व है, वह सत्व की बात हमने इसमें से उड़ा दी है। यह विधान का एक मसविदा बनाया गया है, लेकिन इस मसविदे में जो प्राण, जो सात्त्विकता है, उसमें भारत का हृदय नहीं है। इस विधान में अपनापन नहीं है। इस विधान में सजावट है; वह सजावट फूलों की सजावट है, कई दूसरी चीजों की सजावट है। लेकिन उसमें जो महक आनी चाहिए, उसमें जो सौरभ, सुगन्ध आनी चाहिए, वह सुगन्ध इस विधान में नहीं पाई जाती है। माफ कीजिये, मैं कमेटी की मेहनत को बरबाद नहीं समझता हूं; लेकिन अगर यही विधान होता, तो मैं नहीं मानता हूं कि इतने महीने तक हम इसके पीछे क्यों लगे रहे हैं इसमें कुछ बातें अच्छी हैं, इसका मुझे कोई अन्देशा नहीं है और इसके लिए मैं जरूर मुबारिकबाद दे सकता हूं। लेकिन सारा विधान

[श्री गोकलभाई डी. भट्ट]

देखते हुए मुझे यह डर है कि यह विधान भारतीय विधान है कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता हूं।

डाक्टर साहब ने बड़ी हिम्मत से कहा और वह यह कहते हैं कि उनकी ड्राफ्टिंग कमेटी के दूसरे सदस्य यह मानते हैं कि इस विधान में जो चीज आनी चाहिए, जो भारतवर्ष का एक पंचायती राज्य, या तो ग्राम-पंचायती तंत्र आना चाहिए, उसकी बुनियाद इसमें नहीं है। उसकी बुनियाद नहीं है, तो मैं कहता हूं कि वह भारत का विधान कभी हो ही नहीं सकता है। जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको उठाया है और जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको आज तक जिन्दा रखा है, उस चीज़ को हम भूल जाते हैं, या तो उस चीज़ को ठुकरा देते हैं और यह कहते हैं बड़ी हिम्मत के साथ कि हमने जान बूझकर उस चीज़ को ठुकरा दिया है। मैं कहता हूं, बड़े अदब के साथ मैं अपना विरोध दर्शाता हूं। इस चीज़ को ठुकराना चाहिए और उसको हमारे विधान में न लाना चाहिए, ऐसा उनका कहना है। उन्होंने बड़े जोर से कहा है और इन लफ्जों में कहा है। मुझे दर्द हुआ कि यह लफ्ज हमारी विधान कमेटी के सदर ऐसे शब्द इस्तेमाल करते हैं, वह यह कहते हैं, फरमाते हैं: What is the village but a sink of localism and den of ignorance... I am glad the Draft Constitution has discarded the village.'' मुझे बड़ा रंज हुआ कि इस रीत से हमारे महापंडित संस्कृत के ज्ञाता और राजनीति से बड़ी जानकारी रखने वाले, वह हमारी ग्राम-पंचायतों की जो प्रथा है, पंचों की प्रथा है, उसका घोर विरोध करते हैं। विलेज के यही मानी हैं कि ''It is to be discarded'' तो उसी तरह कोई हिम्मत के साथ यह भी कह सकता है कि ''this Constitution must be discarded'' लेकिन मैं तो एक अदना आदमी हूं, बहुत तज़रुबा भी नहीं रखता हूं। कुछ आवेश में भी बोल जाता हूं। कुछ भी हो, लेकिन किसी न किसी हालत में अभी भी हम जो अमेंडमेंट लाना चाहते हैं, उसमें यह चीज़ आनी ही चाहिए कि हमारी बुनियाद ग्रामों के प्रजातंत्र से पड़नी चाहिए और तभी वह विधान मुकम्मिल होने वाला है, तब वह विधान प्राणवत होने वाला है। तब हम समझेंगे कि हमारा यह विधान बना है। नहीं तो यह रेत की नींव पर हम एक बड़ी इमारत बनाने जा रहे हैं और वह सचमुच गिर जाने वाली है, यही मेरा एक खास सुझाव है। इसलिए मैं भी बोलना चाहता था।

एक दूसरी बात मैं आपको बतलाना चाहता हूं। वह यह है कि हमारी रियासतों के कई संघ बन चुके हैं। एक बड़ी खुशी की बात है कि हमारे काबिल नेता सरदार पटेल ने जिस तेजी के साथ रियासतों की शकल बदली है, उसके लिए हम बहुत गर्व करते हैं लेकिन अब समय वह आ गया है, मैं मानता हूं कि जब कि विधान हमारा दिसम्बर के आखिर तक या तो जनवरी में मुकम्मिल हो जायेगा, तब तक हमारी कई ऐसी रियासतें हैं, जो रियासतें वैसे अकेली रह सकती हैं। अगर उड़ीसा प्रान्त अकेला अलग रह सकता है, तो कोई कहेंगे कि कई रियासतें भी अलग रह सकेंगी। ट्रावनकोर अलग रह सकेगा, कोचीन रह सकेगा, जयपुर जोधपुर, बगैरह भी रह सकेंगे।

लेकिन मैं बड़े अदब के साथ कहना चाहता हं कि हम यह छोटे-छोटे प्रान्त अगर बनाने बैठेंगे तो जो प्राविन्शियलिज़्म आज है, उससे बहुत कुछ बढ़ जायेगी और हमारी जो एकता है वह बिखर जायेगी। हमारी मजबूती जितनी आज है, उतनी नहीं रहेगी, और उसके लिए मैं तो यह कहना चाहता हूं कि अगर स्टेट्स भी हैं, प्राविन्सेज भी हैं तो वह बड़े होने चाहिए और अच्छे होने चाहिए और उनको अपने पैरों पर खड़ा रहना चाहिए। छः करोड, सात करोड़, आठ करोड़ की आमदनियां काफी नहीं हैं। यह चीज पर्याप्त नहीं है, उसमें एक सूबा अच्छी तरह से चल नहीं सकता है। मेरी अपनी राय तो यह है कि एक सूबे की आमदनी बीस-पच्चीस करोड़ से कम न हो और कम वाला वह सूबा न बनना चाहिये। अगर वह रियासती संघ बना हो, तो वह रियासती संघ भी नहीं बनना चाहिए। यह मेरी राय है।

लेकिन वह तो सोचने की बात है, हमारे नेताओं के सोचने की बात है, लेकिन मैं यह चाहता हूं। मैं तो राजपूताने से आ रहा हूं, छोटी रियासतों से आ रहा हूं। तो मेरा तो यह कहना है कि राजाओं ने बहुत कुछ कुर्बानी की है, राजाओं के आत्मसमर्पण की हम प्रशंसा करते हैं, हम यह देखते हैं कि भोपाल है, वह मध्य भारत से अलग एक टुकड़ा बना रहे, रामपुर, बनारस अलग बैठे रहें, हमारे जोधपुर और बीकानेर भी अलग बैठे रहें, यह कब तक? आखिर जब हिन्दुस्तान के सूबे बनने वाले हैं और बड़े सूबे बनाने चाहियें, तो मैं मानता हूं कि राजाओं को बड़े राजाओं को एक कदम आगे बढ़ना चाहिये और उन लोगों को मिलजुल कर अब अच्छे बड़े प्रान्त बनाने चाहियें। मैं राजपूताने का नाम लूं, तो राजपूताना

[श्री गोकलभाई डी. भट्ट]

और उसमें अजमेर-मेरवाड़ा का प्रश्न हल हो जायेगा। वह छोटा सा प्रान्त है, उसे क्यों अलग रखा जाये? वह राजपूताना का अंग है और उसी में मिला दिया जाये। राजाओं की कद्र करने के लिए उनको ओहदे दिए जाने चाहियें। राजप्रमुख और उपराजप्रमुख तो हैं ही, लेकिन भारत में और भी जगह हैं, वह उनको दी जायें, क्योंकि हम उनकी कद्र करते हैं, तो इन रियासतों के मामलें में अब हम अन्य सूबों से किसी तरह पीछे नहीं रहना चाहते हैं। और पीछे हमें नहीं रहना चाहिए। किसी लिहाज से हमें यह कहा जाये कि नहीं तुमको तो इतने ही सब्जैक्ट्स (Subjects) हैं, तो मैं कहता हूं कि नहीं। अब हम यह मानें कि हमारा स्टेट्स बढ़ा दिया जाये, क्योंकि आप हम पर मेहरबान हैं, आप हमें आगे ले जाना चाहते हैं, तो मैं कहता हूं कि हम दूसरे सूबों से अलग नहीं रहेंगे, उनकी स्थिति एक सी रहे, चाहे वह हाईकोर्ट का मामला हो या सुप्रीम कोर्ट का हो, वह एक से होने चाहिए। आप इसमें इमदाद कीजियेगा। और हमारे नेताओं से कहा जायेगा कि आप हमारी मदद कीजियेगा, आप हमें आगे ले जाइये और वहीं हमें बैठाइये, जहां उनका (प्रान्तों का) स्थान हो वहीं हमें भी बैठाया जाये।

मैं बहुत लम्बी-लम्बी बातें भी नहीं करूंगा, क्योंकि इतने मित्रों ने उन बातों का जिक्र किया है, लेकिन मैं इस चीज को कहना चाहता हूं कि छोटे-छोटे सूबे बनाने के बारे में (यानी Linguistic Provinces) के बारे में तो मेरी राय अलग है। और मैं यह मानता हूं कि आज जो हिन्दुस्तान की हालत है, उस हालत में कम से कम दस साल तक इस चीज का हम नाम न लें और अब हमारी एकता, जो हम स्थापित कर रहे हैं, और जो देश हम बना रहे हैं, उसे मजबूत बनाने में इन मित्रों को मैं जरूर अर्ज करना चाहता हूं कि वह इस (Linguistic Provinces) के झगड़े को फिलहाल मोकूफ रखें। जब हम स्थिर हो जायेंगे, तब दस साल के बाद इस चीज को हम सोचेंगे। यही मुझे अर्ज करना था। दिल्ली वगैरह के बारे में मैं उनको कहूंगा कि हमें देखना चाहिए कि दिल्ली राजधानी है, उसे एक अलग ''Status'' मिलना चाहिए, उसके लिए तो मैं भी देशबन्धुजी से एक राय हूं। लेकिन अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग, पन्थ-पिपलोदा, जो छोटी-छोटी चीजें हैं, उन चीजों को प्रान्त में मिला देना चाहिए। उसको ''Centrally Administered'' होने से क्या करना है। आखिर इतना ही मैं डाक्टर साहब से

अर्ज करना चाहता हूं। वह बड़े पंडित हैं, लेकिन पंडित हैं तो हिन्दस्तान को पंडित बनायें। भारतवर्ष का विधान जो बन रहा है, उसमें भारत का अपनापन दाखिल करें, यही मेरी अर्ज है।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): (*हर्षध्वनि के बीच उठते हुए*) उपाध्यक्ष महोदय, हम अपने सफर की आखिरी मंजिल पर पहुंचे गये हैं। करीब दो साल हुए, हम लोग इस भवन में समवेत हुए थे और उस पवित्र और गम्भीर अवसर पर मुझे ही यह प्रस्ताव उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो लक्ष्य-प्रस्ताव के नाम से आज विख्यात हैं इस प्रस्ताव को लक्ष्य-प्रस्ताव कहना तो उसको एक नीरस और शुष्क नाम देना होगा, क्योंकि उसमें न केवल लक्ष्य का ही वरन् उससे भी ऊंची बातों का समावेश था, यद्यपि किसी राष्ट्र के जीवन के लिए लक्ष्य एक बहुत बड़ी चीज होती है। उस प्रस्ताव में, जहां तक कि भाषा में उसे रखना सम्भव था, वह भावना रखने की कोशिश की गयी थी जो भारतीय जनसमुदाय के हृदयों में पूर्ण मात्रा में सदा व्याप्त रही है। मैं नहीं जानता कि हम ऐसा करने में कहां तक सफल हुए हैं। किन्तु जो भी हो, हमें उसी भावना से विधान-निर्माण का काम करना है और उसी भावना से हमें विधान सम्बन्धी बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करना है और इस सम्बन्ध में सदा अपने सामने लक्ष्य-प्रस्ताव को ही मापदण्ड के रूप में रखकर विधान की प्रत्येक धारा, प्रत्येक वाक्य को हमें तय करना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह भी अवश्य हो सकता है कि हम उक्त प्रस्ताव से भी सुन्दर कोई बात विधान में रखें, यदि यह शक्य हो तो हमें अवश्य ऐसा करना चाहिए। किन्तु मैं समझता हूं कि उस प्रस्ताव के कुछ हिस्सों में वह बुनियादी और मूलभूत बातें बता दी गयी हैं, जो कि हमारे विधान में होनी चाहिए। आखिर विधान क्या है? यह एक प्रकार की विधि-पुस्तिका है, जिसके अनुसार शासन-व्यवस्था संचालित की जाती है और जिसके आधार पर जाति का जीवन-क्रम चलता है। वह विधान जिसका कि जाति के जीवन से सम्बन्ध नहीं, जिसमें राष्ट्र की आकांक्षाओं और लक्ष्यों की बात सन्निहित नहीं, वह बिल्कुल निष्प्राण और व्यर्थ है; यदि विधान में जातीय लक्ष्यों के लिये समुपयुक्त नहीं होता, तो इसका फल यह होता है कि वह समस्त राष्ट्र को ही

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

नीचे गिरा देता है। विधान कुछ ऐसा महान होना चाहिए कि जाति की दृष्टि और कल्पना उच्च लक्ष्यों की ओर ही जाये। मैं समझता हूं कि लक्ष्य-प्रस्ताव ने हमारा यह उद्देश्य अवश्य पूरा किया है। जब से लक्ष्य प्रस्ताव पास हुआ है, कई बार वाद-विवाद के सिलसिले में उत्तेजना पैदा हो चुकी है और यह सब ऐसी बातों को लेकर हुआ है जो मैं तो कहूंगा कि राष्ट्रीय आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को मूर्तिमान रूप देने के काम को, अर्थात विधान निर्माण के काम को देखते हुए महत्त्वपूर्ण नहीं है, मेरा मतलब यह नहीं है कि जिन बातों को लेकर यहां उत्तेजना पैदा हुई है वह महत्त्वशून्य है, क्योंकि जाति के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली हर बात महत्त्वपूर्ण है; किन्तु फिर भी यह तो हमें सोचना ही चाहिए कि किस प्रश्न को हम प्राथमिकता दें और कौन सी बात अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्य तो बहुत सी बातें हो सकती हैं, किन्तु हमें यह जानना आवश्यक है कि पहली सत्य बात क्या है। यह जानना बहुत जरूरी है कि एक स्थिति-विशेष में हमें पहले कौन काम करना होगा, पहले हम किस बात पर विचार करें और उसे तय करें। जाति और राष्ट्र की योग्यता ही इस बात से आंकी जाती है कि आया वह यह जानकारी रखता है कि नहीं कि पहले उसे कौन काम करना चाहिए और फिर बाद में कौन। अगर हम उस काम को प्राथमिकता दें, जिसे हमें बाद में करना चाहिए, तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि हमारा जो सबसे जरूरी काम होगा, वह पिछड़ जायेगा।

मसौदे के इस प्रारम्भिक वाद-विवाद में आपकी अनुमति से मैं भाग तो ले रहा हूं, उपाध्यक्ष महोदय, किन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि प्रस्तुत मसौदे के किसी विशेष भाग के सम्बन्ध में, प्रशंसा या आलोचना के रूप में कुछ कहूं, क्योंकि प्रशंसा या आलोचना के रूप में बहुत कुछ कहा जा चुका है और आगे भी अवश्य ही बहुत कुछ कहा जायेगा। किन्तु इस बात का ख्याल करके कि कई बुनियादी बातों की ओर फिर से सभा का ध्यान आकृष्ट करके शायद मैं इस वाद-विवाद में कुछ उपयोगी सहायता दे सकूं, मैंने सोचा कि मुझे अवश्य ही इसमें भाग लेना चाहिए; और विशेष करके इसलिए कि इधर कई दिनों और हफ्तों में अपने देश से दूर अनेक विदेशों में घूमा, उन देशों के प्रमुख नागरिकों

और राजनीतिज्ञों से मुलाकात की और मुझे अपने इस परम प्रिय देश को दूर से देखने की सुविधा मिली यह एक सुविधा की बात जरूर है। यह सच है कि जो लोग दूर से देखते हैं वह बहुत सी उन बातों को नहीं देख पाते जो इस देश में वर्तमान है। किन्तु उसी तरह यह भी सच है कि जो लोग यहां रह रहे हैं और सदा ही यहां की विभिन्न कठिनाइयों और समस्याओं से घिरे रहते हैं, सम्भव है कि वे यहां की पूरी तस्वीर को कभी-कभी न देख पायें। हमें दोनों ही काम करने है; कहने का मतलब यह कि हमें अपनी समस्याओं की प्रत्येक जटिल बात को देखना है, ताकि हम उन्हें अच्छी तरह समझ सकें और साथ ही हमें उन्हें एक विशेष रूप से भी देखना है, ताकि हमारे सामने उनकी पूरी तस्वीर आ जाये।

ऐसे द्रुत परिवर्तन के काल में, जिससे कि हम अभी गुजरे हैं, ऐसा करना और भी आवश्यक हो जाता है। इस परिवर्तन काल में विजय और हर्ष, दुख और क्षोभ, सभी का हमने अनुभव किया है। इन परिवर्तनों का हम पर असर पड़ा है। स्वयं हममें परिवर्तन आता जा रहा है। हम स्वकीय परिवर्तन को, या देश में जो घोर परिवर्तन हो रहा है, उसको नहीं देख पाते हैं और इस उथल-पुथल से परे होकर दूर से इन बातों को देखना और फिर कुछ हद तक दूसरों की दृष्टि से इन सारी बातों को देखना कुछ सहायक ही होता है। मुझे आप लोगों ने ऐसा अवसर दिया था और वस्तुतः मैं यह अवसर पाकर प्रसन्न हूं, क्योंकि इससे कुछ काल के लिए मैं दायित्व के उस गम्भीर भार से मुक्त हो गया था; जिसे हम सभी वहन कर रहे हैं और जिसको कि हममें से कइयों को, जिन पर कि शासन का भार है, विशेष रूप से वहन करना ही पड़ता है। कुछ काल तक मैं इन जिम्मेदारियों के भार से मुक्त था और निश्चित चित्त से उस तस्वीर को देख सकता था, उस पर विचार कर सकता था। मैं आप से कहता हूं कि उस दूरस्थ प्रदेश से मैंने क्षितिज में उदीयमान भारतीय सूर्य की मनोहर किरणों को देखा, (*हर्ष-ध्वनि*) और यह भी देखा कि सभी दुखद घटनाओं की उपेक्षा करके वह किरणें अपना मधुर प्रकाश विश्व के उन विभिन्न देशों पर बिखेर रही थीं, जो उसकी ओर आशा भरी निगाह से देख रहे थे, जो यह समझते थे कि नवीन स्वतंत्र भारत में ऐसी विभिन्न शक्तियों को प्रादुर्भाव होगा जो एशिया को सहायता देंगी, जो विश्व को सहायता देंगी ताकि वह ठीक-ठीक दिशा में चल सके, जो अन्यत्र वर्तमान ऐसी ही शक्तियों को सहयोग देंगी क्योंकि आज विश्व की हालत बुरी है, एशिया

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

अथवा यूरोप या बाकी दुनियां की हालत बुरी है और उनके सामने ऐसी समस्याएं खड़ी हो गई हैं जो प्राय: दु:साध्य सी दिखती हैं।

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम सभी किसी ऐसे भयंकर दुखान्त अभिनय के पात्र है, जिसमें विपत्ति अवश्यम्भावी रूप से अपनी चरमसीमा पर पहुंचती जा रही हो। फिर भी जब मैंने उस तस्वीर को बार-बार देखा, तो आशा एवं सफलता की भावना मेरे हृष्ट-हृदय में पैदा हुई न केवल भारत को सोचकर बल्कि इसलिए भी कि और अन्य कई बातों को देखकर यह पता चला कि जो विपत्ति अवश्यम्भावी मालूम पड़ती थी वह वस्तुत: अवश्यम्भावी नहीं है; और भी कई कल्याणकारी शक्तियां काम कर रही हैं; सद्भावना रखने वाले असंख्य नर-नारी विश्व में वर्तमान हैं, जो इस विपत्ति को रोकना चाहते हैं और निश्चय ही यह सम्भव है कि वे इसे रोकने में सफल होंगे।

आज प्राय: ठीक-ठीक एक वर्ष और ग्यारह महीने हुए कि मैंने इस सभा के समक्ष लक्ष्य-प्रस्ताव उपस्थित किया था और तब से हमने अनेक अद्भुत परिवर्तन और स्थिति-परिवर्तन देखे। आज हम उस समय की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रतापूर्वक यहां अपना काम कर रहे हैं। अब हम एक सर्वसत्ता प्राप्त एवं स्वतंत्र-राष्ट्र की हैसियत से काम कर रहे हैं। इस मध्यवर्ती काल में हमने बहुतेरे दुखों और गम्भीर शोकों का अनुभव किया है और इन सबका हम पर जबदस्त असर पड़ा है। वह देश जिसके लिए हम विधान बनाने जा रहे हैं दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। विभाजन के बाद जो कुछ हुआ, उसकी याद आज भी हमारे दिलों में बनी हुई है और उसकी विभीषिकाएं हमारी स्मृति में बहुत दिनों तक बनी रहेंगी। यह सारी घटनाएं घटी, किन्तु फिर भी भारत आज और भी अधिक स्वतंत्र और सशक्त हो गया है और निश्चय ही भारत की यह समुन्नति, एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उसका आर्विभूत होना, वर्तमान पीढ़ी के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है; हमारे लिए एवं इस देश में रहने वाले हमारे असंख्य भाई-बहनों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, यह एशिया के लिए एक महत्त्वपूर्ण बात है, समस्त विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण है और आज विश्व यह समझने लगा है—और मुझे इसकी खुशी है—कि भारत एशिया एवं विश्व के कार्यों में एक प्रमुख और कल्याणकारी भाग लेगा। हो सकता है कि ऐसा समझते हुए भी विश्व इस सम्बन्ध में कभी-कभी आशंकित हो जाये, क्योंकि सम्भवत: भारत को ऐसे भी काम करने

पड़ें जो कुछ लोगों को, कुछ देशों को, जिनके कुछ अपने अन्य स्वार्थ है, खास तौर पर नापसन्द हों। यह सारी बातें तो हो ही रही है, किन्तु इस सम्बन्ध में प्रमुख महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत एक दीर्घकालीन पराधीनता के पश्चात् आज एक स्वाधीन सार्वभौम सत्ताधारी गणतंत्रीय राष्ट्र के रूप में सामने आया है और यह ऐसा तथ्य है जो इतिहास को बदल सकता है और बदल रहा है। यह तथ्य इतिहास को कहां तक बदलेगा, यह निर्भर करता है हम सब पर, इस सभा पर तथा आने वाली इसी प्रकार की अन्य सभाओं पर, जो भारतीय जनता की सुसंगठित भावना का प्रतिनिधित्व करेंगी।

यह एक महान् दायित्व है। स्वाधीनता के फलस्वरूप दायित्व का आना स्वाभाविक है और बिना दायित्व के भी कोई स्वाधीनता हो सकती है, यह बात ही अचिन्त्य है। दायित्व-शून्यता का अर्थ ही है, स्वाधीनता का अभाव। इसलिए हमें दायित्व के इस गम्भीर भार का सदा ध्यान रखना चाहिए, जो कि स्वाधीनता के फलस्वरूप आज हमारे सामने उपस्थित है। दायित्व का गम्भीर भार क्या है? यह है स्वतंत्रता सम्बन्धी अनुशासन तथा सुंसगठित रूप से इस स्वातंत्रय को कार्यान्वित करना। इतना ही नहीं बल्कि इससे और गम्भीरतर एक दायित्व है जिसका हमें ध्यान रहना चाहिए। इतिहास, परम्परा, साधन-सामग्री, हमारी भौगोलिक स्थिति एवं हमारी अस्तित्व-क्षमता आदि कई बातों के कारण हमें यह स्वाधीनता प्राप्त हुई है और यह स्वाधीनता अनिवार्य रूप से भारत को इस बात के लिए अग्रसर करती है कि वह विश्व के कार्यों में महत्त्वपूर्ण भाग ले। स्थिति यह नहीं है कि हम चाहे जो मार्ग ग्रहण करें, बल्कि वर्तमान भारत को देखते हुए तथा यह विचारते हुए कि स्वाधीन भारत को क्या होना होगा, हमें अनिवार्य रूप से विश्व के कामों में महत्त्वपूर्ण भाग लेना ही होगा। इस कारण हमारे सामने एक और भी गंभीर दायित्व का भार है, जिसे हमें वहन करना ही चाहिए। इस सम्बन्ध में मुझे अपने राष्ट्र पर पूर्ण विश्वास है, पूरा भरोसा है किन्तु फिर भी कभी-कभी मैं उन दायित्वों का ख्याल करके कांप उठता हूं, जो हम पर आरोपित किये जा रहे हैं और जिनसे हम भाग नहीं सकते। यदि हम इन संकीर्ण मत-भेदों में ही अपने को खो देते हैं, तो हो सकता है कि अपनी इस बड़ी जिम्मेदारी को हम भूल जायें। हम इसे भूलें या न भूलें, किन्तु यह जिम्मेदारी तो हमारे सामने है ही। अगर हम इसे भूल जाते हैं तो हम अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं। इसलिए मैं सभा से

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

अनुरोध करूंगा कि वह इन दायित्वों पर सोच-विचार करे जो कि भारत पर परिस्थिति द्वारा आरोपित किये गए हैं और चूंकि हम इस सम्बन्ध में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जैसा कि अन्य कई मसलों के सम्बन्ध में हम करते हैं, यह जिम्मेदारी इस सभा में हम पर है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि इस जिम्मेदारी को सदा ध्यान में रखते हुए वह विधान-निर्माण के कार्य में अथवा अन्य कार्यों में सदा सम्मिलित रूप से काम करे, क्योंकि सारी दुनियां की निगाह हमारी ओर है और विश्व का एक वृहद् भाग हम पर बड़ी-बड़ी आशा लगाये बैठा हैं हम आज लघु बनने का साहस ही नहीं कर सकते और अगर हमने ऐसा किया तो हम अपने देश का बड़ा अहित करेंगे, उन आशाओं और मनोरथों के प्रति बड़ा अहित करेंगे, जो अन्य देश हम पर केन्द्रित किये बैठे हैं मैं चाहता हूं कि सभा इसी भावना से प्रस्तुत विधान पर विचार करे। लक्ष्य-प्रस्ताव को सामने रखकर ही वह इस सम्बन्ध में अग्रसर हो और यह देखे कि कहां तक हम इस प्रस्ताव के अनुसार चल रहे हैं, कहां तक हम राष्ट्र-निर्माण का काम इस प्रस्ताव में कहें, इन शब्दों के अनुसार कर रहे हैं:

> ''यह विधान परिषद्-भारतवर्ष को एक पूर्ण स्वतंत्र जनतंत्र घोषित करने का दृढ़ और गम्भीर संकल्प प्रकट करती है और निश्चय करती है कि उसके भावी शासन के लिए एक विधान बनाया जाये, जिसमें सर्वतंत्र-स्वतंत्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अंगों की सारी शक्ति और सत्ता (अधिकार) जनता द्वारा प्राप्त होंगे... और जिसमें सभी लोगों (जनता) को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति व सुविधा की तथा मानवीय समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों को प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, ईश्वरोपासना की, काम-धन्धे की, संघ बनाने व काम करने की स्वतंत्रता के अधिकार रहेंगे और माने जायेंगे... और यह प्राचीन संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानव जाति का हित-साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।''

मैं इस प्रस्ताव के अंतिम अंश को विशेष रूप से दुहरा रहा हूं, क्योंकि यह इस बात का हमें स्मरण दिला देता है कि विश्व के प्रति भारत का क्या कर्त्तव्य है। मैं चाहता हूं कि यह सभा इन विभिन्न मतभेदों पर विचार करते समय—मतभेद तो होंगे ही और होने भी चाहिएं, क्योंकि हम एक सजीव, चेतना-सम्पन्न राष्ट्र हैं और यह उचित ही है कि लोग विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करें—इस बात का सदा ध्यान रखें कि हम जो निर्णय करें, मिलजुलकर करें और उन निर्णयों को कार्यान्वित करने में हम सम्मिलित रूप से सचेष्ट रहे हैं। समस्याएं भी तरह-तरह की होती हैं। कुछ समस्याएं बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं और जिनके बारे में हम निर्णय कर लेते हैं। कुछ ऐसी भी समस्याएं होती हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी सम्भवत: कुछ कम महत्त्व की होती है। बहुधा उनके सम्बन्ध में हम बहुत सा समय लगा देते हैं, अपनी शक्ति बर्बाद कर देते हैं, हममें उत्तेजना भी आ जाती है और उनके सम्बन्ध में हम उस भावना से निर्णय नहीं करते, जिससे कि हमें करना चाहिए। आज देश में कई प्रश्न उठाये जा रहे और मैं यहां ऐसे एक या दो प्रश्नों का उल्लेख करूंगा। इस सभा में भाषा के आधार पर प्रान्त-रचना की चर्चा की जा रही है और राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उठाया जा रहा है। इन प्रश्नों के सम्बन्ध में मैं कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता, सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि मुझे यह अनिवार्य प्रतीत होता है और बहुत दिनों से ही यह प्रतीत होता आ रहा है कि भारत में प्रांतों आदि का कुछ इस प्रकार से पुन: संगठन होना चाहिए कि जनता की सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक अवस्था के साथ तथा उनकी इच्छाओं के साथ उनका और अधिक मेल हो सके। बहुत दिन पहले ही हम ऐसा करने का वचन दे चुके हैं। मैं इसे अच्छा नहीं समझता कि अभी भाषावार प्रान्त बनाने की बात उठाई जाये। निश्चय ही यह महत्त्वपूर्ण, विचारणीय प्रश्न है। किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय बातें हमारे सामने वर्तमान हैं, जिन पर हमें अभी विचार करना है। इसलिए पहले इसके लिए हमने जो कुछ प्राप्त किया है, उसको खण्ड-खण्ड करके हम कोई नवीन स्वरूप दें, ठीक यह होगा कि हम सभी बातों पर आद्योपान्त पूर्णरूप से विचार कर लें। इस सम्बन्ध में, मैं जो बात सभा से कहना चाहता हूं, वह यह है कि हमारे भविष्य के जीवन एक

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

शासन की दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण तो अवश्य है, पर मैं ऐसा नहीं समझता कि यह प्रश्न कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण है कि इसको आज अभी तय कर लेना हमारे लिए आवश्यक है। प्रधानतः यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में हमें शान्ति और सद्भावना के वातावरण में और इसके विभिन्न अंगों पर विद्वतापूर्ण ढंग से विचार करके किसी निर्णय पर पहुंचना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्य से मैं यह देखता हूं कि इसको लेकर यहां बहुत उत्तेजना पैदा हो गई है। उत्तेजना की अवस्था में हमारा दिमाग साफ नहीं होता। इसलिए मैं सभा से आग्रह करूंगा कि वह इस प्रश्न पर ऐसे समय मे विचार करे जिसे कि वह इसके लिए ठीक समझे। मैं आग्रह करूंगा कि आप लोग इस प्रश्न को ऐसा गम्भीर समझें कि इस पर उत्तेजना की अवस्था में, जल्दबाजी में हम विचार न करें, इस पर तो उपयुक्त समय आने पर ही विचार किया जा सकता है।

भाषा सम्बन्धी प्रश्न के बारे में भी मेरा यही कहना है। यह तो एक स्पष्ट बात है, नितान्त आवश्यक बात है कि प्रत्येक देश और स्वतंत्र देश तो अनिवार्य रूप से, अपनी ही भाषा में अपना सारा काम करें। मैं यहां अंग्रेजी में बोल रहा हूं और इसी तरह हमारे अन्य कई साथियों को भी यहां अंग्रेजी में ही बोलना पड़ता है। इससे ही जाहिर है कि हममें कुछ कमी है। कमी हममें जरूर है और इसे हमें स्वीकार करना चाहिए। हम इस कमी को दूर करेंगे। किन्तु अगर हम भाषा बदलने पर जोर देते हैं, इस दिशा में अविलम्ब कोई परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं, तो इससे हम असंख्य मतभेदों में फंस जायेंगे और सम्भवतः हमारा समूचा विधान यों ही रुका पड़ा रह जायेगा। मैं सभा से कहूंगा कि यह कोई बुद्धिमानी की बात न होगी। व्यक्ति के जीवन के लिए और राष्ट्र के लिए भाषा का बड़ा ही महत्त्व है और चूंकि यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है, हमें इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए महत्त्वपूर्ण होने के नाते यह एक ऐसा विषय है, जिस पर हमें शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी बात है कि विषय के महत्त्वपूर्ण होने के नाते इसमें शीघ्रता करने से हमारे उद्देश्य को हानि पहुंच सकती है। इसमें कुछ परस्पर विरोध है। यदि किसी आवश्यक प्रश्न

के सम्बन्ध में हम बहुमत द्वारा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले अनिच्छुक अल्पमत पर अथवा इस सभा के ही अल्पमत पर कोई निर्णय जबर्दस्ती लाद देते हैं, तो इससे वस्तुतः हम जो उद्देश्य सिद्ध करने चले हैं, उसमें हमें सफलता नहीं प्राप्त होगी। देश में विभिन्न शक्तियां काम कर रही हैं, जो अंग्रेजी के स्थान में किसी भारतीय भाषा को अथवा जहां तक कि प्रदेशों का सम्बन्ध है प्रादेशिक भाषाओं को, अनिवार्य रूप से बिठा ही देंगी। किन्तु समस्त देश के लिए एक ही राष्ट्र-भाषा होगी। इस एक राष्ट्र-भाषा के निर्माण के लिए विभिन्न शक्तियां कार्यरत है। भाषा का निर्माण जनता करती है। जबर्दस्ती जनता पर लाद देने से कोई भाषा नहीं बनती। किसी भी विशेष भाषा को अनिच्छुक लोगों पर लादने से उसका अधिकतर प्रबल विरोध ही हुआ है और इसका परिणाम बिल्कुल उसका उलटा हुआ है, जो कि उस भाषा के हिमायतियों ने सोचा था। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस तथ्य पर विचार करें और इस बात को समझे—यदि वह मुझसे सहमत हों—कि एक प्राकृतिक अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा बनाने का सुनिश्चित मार्ग यह नहीं है कि उसके सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये जाये और कानून बनाये जायें, बल्कि सही रास्ता यह है कि उसके लिए और उपायों से काम लिया जाये। भारत की राष्ट्र-भाषा क्या हो, इसके सम्बन्ध में मेरा अपना निजी एक विचार है। इस सम्बन्ध में दूसरों के विचार, हो सकता है, मेरे से भिन्न हों। देश पर अथवा इस सभा पर मैं जबर्दस्ती अपना विचार नहीं लाद सकता और इसी तरह दूसरे भी अपना विचार नहीं लाद सकते, जब तक कि स्वयं देश ही उसे न स्वीकार कर ले। मैं न तो अपना विचार लादना चाहूंगा और न यह चाहूंगा कि औरों के ही विचार लादे जाये। इसके प्रतिकूल मैं यह चाहूंगा कि इस दिशा में मिलजुलकर काम किया जाये और यह विचार किया जाये कि विधान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों को तय कर लेने के बाद, यथेष्ट स्थिरता प्राप्त कर लेने के बाद और अधिक उपयुक्त वातावरण में हम एक-एक करके इन प्रश्नों को किस तरह तय करें।

आपको याद होगा कि जब मैंने लक्ष्य-प्रस्ताव को इस सभा के सामने उपस्थित किया था, तो मैंने इस बात का उल्लेख किया था कि प्रस्ताव द्वारा हम यह निश्चित कर देते हैं कि हमारा विधान एक स्वतंत्र सर्वसत्ता प्राप्त गणतंत्र राज्य का विधान

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

होना चाहिये। उस समय भी मैंने यह कहा था और बाद में भी कि अपने गणतंत्र राज्य स्थापित करने का जो सवाल है, उसके सम्बन्ध में निर्णय हम को ही करना है। इस प्रश्न का इस बात से कोई भी सम्बन्ध नहीं है कि हमारा अन्य देशों से, खासकर संयुक्त राज्य या कामनवेल्थ से अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से क्या सम्बन्ध हो। ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से तथा अन्य देशों से हमारा कैसा सम्बन्ध होना चाहिये, इसका भी निर्णय इस सभा को ही करना है और किसी को नहीं। और इस निर्णय से इस बात का भी कोई सम्बन्ध नहीं है कि हमारा विधान कैसा हो। मैं सभा को सूचित कर देना चाहता हूं कि उन दिनों जब मैं ब्रिटेन में था, जब भी इस विषय पर या इससे सम्बन्धित किसी विषय पर निजी तौर पर कोई विचार किया गया—सार्वजनिक रूप में इस सम्बन्ध में कोई विचार या निश्चय नहीं हुआ क्योंकि राष्ट्र-मण्डल सम्मेलन में, जिसमें मैं शामिल हुआ था, किसी भी बैठक में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था, पर उसके सम्बन्ध में निजी तौर पर विचार करना अनिवार्य था क्योंकि हमारे ही देश के लिये नहीं वरन् अन्य देशों के लिये यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है कि हम लोगों का दूसरे देशों के साथ कैसा सम्बन्ध, कैसा सम्पर्क हो—तो अनिवार्यतः पहली बात जो मुझे कहनी पड़ती थी, वह यह थी कि यद्यपि देश ने मुझे प्रधान मंत्री का गौरवान्वित पद प्रदान किया है, किन्तु व्यक्तिगत रूप से इस सम्बन्ध में देश की ओर से मैं कोई वचन नहीं दे सकता और जिस सरकार का प्रतिनिधित्व करने का मुझे यहां गौरव प्राप्त है, वह सरकार भी स्वयं इस सम्बन्ध में कोई निर्णय अन्तिम रूप से नहीं कर सकती है। यह ऐसा प्रश्न है जिसके सम्बन्ध में हमारी विधान-परिषद् ही कोई निर्णय कर सकेगी। इन सारी बातों को मैंने साफ-साफ कह दिया। और यह साफ करने के बाद मैंने परिषद् के इस लक्ष्य-प्रस्ताव की बात भी वहां बता दी। मैंने उनसे यह कहा कि अवश्य ही विधान-परिषद् चाहे तो इस प्रस्ताव में परिवर्तन कर सकती है, जैसा कि वह अन्य किसी भी बात के सम्बन्ध में कर सकती है, क्योंकि इन सभी मामलों में वह सर्वतः स्वतंत्र है। किन्तु परिषद् ने स्वयं को तथा मसौदा-समिति को विधान के सम्बन्ध में आदेश के रूप में यह लक्ष्य-प्रस्ताव दिया है और जब तक यह आदेश अपने वर्तमान रूप में बना रहता है—और मैंने यह भी बता दिया कि जहां तक मैं जानता हूं यह इसी रूप में रहेगा (*हर्ष ध्वनि*)—हमारा विधान इस लक्ष्य-प्रस्ताव के अनुसार ही होगा। यह सब स्पष्ट कर देने के बाद मैंने उन्हें कहा कि हमारी ओर से यह बात अक्सर कही

गई है कि हम अन्य देशों के साथ, संयुक्तराष्ट्र के साथ तथा संयुक्तराष्ट्र-मण्डल के साथ मैत्री का सम्बन्ध रखना चाहते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यह मैत्री-सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जा सकता है, अथवा किया जाना चाहिये, इस सम्बन्ध में स्वाभाविक है कि हमारी ओर से विधान-परिषद् सावधानी से विचार और अन्तिम निश्चय करेगी और उनकी ओर से उनकी अपनी सरकारें अथवा जनता करेगी। इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस समय मैं इतना ही कहना चाहता हूं, क्योंकि इस अधिवेशन में आगे चलकर अवश्य ही यह प्रश्न सभा के सामने और भी ठोस रूप में आयेगा। यह प्रश्न चाहे जिस रूप में आये, अभी या आगे चलकर, पर जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यह प्रश्न एक अलग बात है और प्रस्तुत विधान से यह सर्वथा स्वतंत्र है, इसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। विधान तो हमें स्वीकार करने जा रहे हैं, सर्वतः स्वतंत्र भारतीय प्रजातंत्र के लिये, एक अपनी इच्छा के गणतंत्र-राज्य के लिये। किन्तु मैत्री-सम्बन्धी प्रश्न ऐसा है कि जिस पर हम पृथक स्वतंत्र रूप से और किसी समय, जब कि सभा ठीक समझे, विचार करेंगे। इससे हमारे विधान पर कोई बन्धन नहीं आता है और न उसकी शक्ति ही सीमित होती है, क्योंकि इस विधान को भारतीय जनता के प्रतिनिधियों ने बनाया है और सुतरां इसमें, भारत के भावी शासन के सम्बन्ध में जनता की जो स्वतंत्र इच्छा है, वह सन्निहित है।

अब मैं फिर वही बात दुहराना चाहता हूं, जिसे मैंने पहले कहा है और वह बात यह है कि नियति ने इस देश पर कुछ विशेष कार्य सम्पादित करने का भार डाल रखा है। जो लोग यहां उपस्थित हैं उनमें किसी को हम भाग्य निर्माता कह सकते हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता क्योंकि यह बहुत बड़ा विशेषण है, जो औसत आदमियों पर लागू नहीं हो सकता। पर हम भले ही भाग्य-निर्णायक नर या नारी न हों, किन्तु भारतवर्ष अवश्य ही एक भाग्य-निर्णायक देश है। (*हर्ष ध्वनि*) इसलिए जहां तक कि हमें इस महान देश का प्रतिनिधित्व करने का गौरव प्राप्त है, जिसके सामने कि एक सुविस्तृत भाग्यक्षेत्र पड़ा हुआ है, हमें भाग्य-निर्माता नर-नारी के रूप में ही काम करना होगा; हमें अपनी सभी समस्याओं पर इसी महान दृष्टिकोण से विचार करना होगा, समस्त विश्व और एशिया का ख्याल रखते हुए हमें अपनी समस्याओं पर विचार करना होगा और इस महान् दायित्व को कभी न भूलना होगा जिसे कि हमारी स्वाधीनता ने, हमारे देश के समुज्ज्वल भविष्य ने हम पर आरोपित कर रखा है। हमें इन तुच्छ मतभेदों और वाद-विवादों में ही नहीं अपने को खो देना चाहिए। ये मतभेद और वाद-विवाद हो सकता है कि

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कुछ उपयोगी हो, पर वर्तमान परिस्थिति में अपने इस महान् दायित्व को देखते हुए ये नितान्त अप्रासंगिक है। असंख्य लोगों की निगाहें हमारी ओर लगी हुई हैं, उनके विचार हम पर केन्द्रित है, इसे हमें याद रखना होगा। हमारे ही करोड़ों देशवासी हमारी ओर देख रहे हैं, करोड़ों दूसरे लोग भी हमारी ओर देख रहे हैं और आप यह याद रखिये कि हम यह अवश्य ही चाहते हैं कि अपने विधान को अधिक से अधिक ठोस और स्थायी बनावें, किन्तु विधान में स्थायित्व नहीं होता, उसमें कुछ लचक होनी ही चाहिए। यदि आप किसी भी चीज को कठोर और स्थायी बनाते हैं, तो आप राष्ट्र के विकास को रोकते हैं, एक सजीव जाति के विकास को रोकते हैं, इसलिए विधान को लचीला रखना ही होगा। उसी तरह विधान को स्वीकार करते समय आप एक अवधि निर्धारित कर दें—वह अवधि चाहे जितने दिनों की हो—जिसके अन्दर विधान में आसानी से बिना किसी कठिन प्रक्रिया के परिवर्तन किया जा सके और मैं समझता हूं कि इस आशय की व्यवस्था विधान में है। कई कारणों से ऐसी व्यवस्था का होना बहुत आवश्यक है। इसका एक कारण तो यह है कि हम लोग, जो यहां सभा में समवेत हैं, अवश्य ही भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं, पर इस विधान के अधीन नया चुनाव होने के बाद, जिसमें कि हर बालिग नर-नारी को मतदान का अधिकार होगा, जो सभा बनेगी—उसका नाम कुछ भी हो—वह वास्तविक प्रतिनिधि-मूलक सभा होगी, जिसमें हमारे प्रत्येक वर्ग के लोग आवेंगे। यह उचित है कि इस प्रकार निर्वाचित सभा को यह अवसर मिलना चाहिए कि वह विधान में इच्छानुसार परिवर्तन कर सके, और विधान के अनुसार उसको अवश्य ही यह अधिकार दिया जायेगा। पर अपने विधान को किसी भी हालत में ऐसा अपरिवर्तनशील नहीं बनाना चाहिए जैसा कि अन्य देशों के विधान है जिसमें कि परिवर्तित स्थितियों के अनुसार आसानी से अनुकूल परिवर्तन किये ही नहीं जा सकते। खासतौर पर आज जब कि समस्त विश्व घोर विप्लव की दशा में है और हम एक द्रुतगामी परिवर्तन काल से गुजर रहे हैं, आज हम जो करते हैं, वह हो सकता है कि कल के लिए उपयोगी न हो। इसलिए हमें अपने विधान को यथासम्भव ठोस और बुनियादी तो बनाना ही चाहिए किन्तु साथ ही इसे लचीला भी रखना चाहिए और हमें ऐसी सुविधा होनी चाहिए कि कुछ वर्षों तक हम इसमें आसानी से संशोधन कर सकें।

आपकी अनुमति से एक शब्द मैं देश के उन लोगों से कहूंगा, जो आज भी अपने पृथक अस्तित्व की, अपने लिए विशेषाधिकार पाने की मनोवृत्ति रखते हैं। अपने लक्ष्य-प्रस्ताव में अल्पसंख्यकों के लिए, कबायली क्षेत्रों के लिए दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए, यथेष्ट संरक्षण की व्यवस्था है। ये संरक्षण उनको अवश्य ही प्राप्त होंगे और बहुसंख्यक-वर्ग का यह कर्त्तव्य और दायित्व है कि वह यह देखे कि उनको ये संरक्षण प्राप्त हों। बहुसंख्यकवर्ग का यह प्रयास होना चाहिए कि उन सभी अल्पसंख्यकों का उन्हें विश्वास प्राप्त हो जाये, जिनका उन पर सन्देह है, जो उनसे भय खाते हैं यह उचित और आवश्यक है कि हम पिछड़े हुए लोगों का जीवनस्तर ऊंचा उठायें और उन्हें अन्य लोगों के स्तर पर लायें। किन्तु यह ठीक नहीं है कि ऐसा करने की चेष्टा में हम और अन्य रुकावटें पैदा कर दें या मौजूदा रुकावटों को ही बने रहने दें, क्योंकि हमारा अन्तिम लक्ष्य पार्थक्य नहीं है, बल्कि यह है कि हमारा देश जीवन-शक्ति से ओत-प्रोत एक राष्ट्र हो। यह जरूरी नहीं है, हमारा राष्ट्र एकाकार हो, क्योंकि हमारी संस्कृतियां तरह-तरह की हैं, हमारा रहन-सहन सर्वत्र एक सा नहीं है, हमारी आदतें भिन्न हैं, हमारी सांस्कृतिक परम्परायें भिन्न हैं। इन विषमताओं की मुझे तो कोई शिकायत नहीं है। दूसरों पर अपना प्रभाव डालने की एक प्रबल प्रवृत्ति आज सभी प्रचलित संस्कृतियों में वर्तमान है। सम्भवत: यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पर मेरी समझ से भारतवर्ष की यही महिमा रही है कि उसने सदा ऐसा पथ ग्रहण किया है, जिसमें उसकी विभिन्न संस्कृतियों का अपना वैचित्र्य भी बना रहा है और साथ ही उनमें समन्वय भी सदा बना रहा है। हमें इन दोनों ही बातों को बनाये रखना है, क्योंकि यदि हम केवल अपनी विभिन्न संस्कृतियों की विशेषताओं को ही बनाये रखेंगे, तो इससे पार्थक्य की भावना होगी और देश के खण्ड-खण्ड बन जायेंगे। और इसके प्रतिकूल यदि हम एक कठोर ऐक्य आरोपित करते हैं, तो इससे हमारा चेतना-सम्पन्न राष्ट्र सर्वथा निष्प्राण हो जायेगा। इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को हम हर प्रकार का अवसर प्रदान करने का प्रयास करें, हर दलित वर्ग को ऊपर उठाने की हरचन्द कोशिश करें। पर मेरी समझ से यह ठीक न होगा कि हम तरह-तरह की रुकावटें पैदा करें, संरक्षणों की मांग करें और इस तरह फिर वही रास्ता अपनायें जो हममें से कुछ ने निकट भूत में अपनाया था। सच तो यह है कि इन दीवारों से, जो अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों को पृथक-पृथक रखेंगी, किसी भी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय या वर्ग को

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कोई संरक्षण नहीं प्राप्त होगा, बल्कि इससे उन्हें क्षति पहुंचेगी। ऐसी व्यवस्था उनको स्थायी रूप से बहुसंख्यकों से पृथक कर देगी और देश के अन्य वर्गों के सन्निकट आने की उनमें कोई प्रवृत्ति ही न शेष रहने देगी।

आशा है, श्रीमान्, कि मैंने अभी जो कुछ कहा है, उसकी विधान की विभिन्न बातों पर विचार करते समय सभा ध्यान में रखेगी और विधान को उसी पवित्र भावना के साथ स्वीकार करेगी, जिससे कि इसने इस महान् कार्य का श्रीगणेश किया था।

(इसके बाद सभा भोजनादि के लिए 3 बजे तक स्थगित हुई।)

[भोजनोपरान्त 3 बजे उपाध्यक्ष, महोदय (श्री एच.सी. मुखर्जी) की अध्यक्षता में विधान-परिषद् पुनः समवेत हुई।]

ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर (पूर्वी पंजाबः सिक्ख): सभापति जी, मैं अपने ऑनरेबुल दोस्त देशबन्धु गुप्ता जी की तरह यह तो नहीं कह सकता कि इस डाफ्ट्र कान्स्टीट्यूशन कमेटी के प्रेसीडेंट डा. अम्बेडकर साहब किसी मुबारकबाद के मुस्तहक नहीं हैं। कई बातों में उन्हें मुबारकबाद दी जा सकती है और इस कान्स्टीट्यूशन पर कमेटी ने जो मेहनत की है, उससे पहले कान्स्टीट्यूशन के बनाने में वह मेहनत जरूर काबिले तारीफ है। मगर फिर भी इसमें जो-जो खामियां किसी को नजर आती हैं, वह अपनी समझ के मुताबिक उनका जिक्र करता है।

इस विधान में जो शहरियत के हक़ूक का पार्ट है, उसकी दफा पांच के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं। इसके मुतल्लिक मेरे कुछ दोस्तों ने पहले भी ध्यान दिलाया है कि अनपढ़ लोगों के लिए डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के सामने जाकर बयान देना बड़ा मुश्किल है। मगर मैं इसे और नुक्तेख्याल से भी देखता हूं और दोनों ही तरीकों से इसमें कोई न कोई तरमीम होनी बड़ी जरूरी है। इसमें गैर-मुल्क और पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दू और सिक्खों में कोई फर्क नहीं रखा गया है। जो लोग इस वक्त भी मजबूरी के तौर पर पाकिस्तान में बैठे हैं, हमारे इस कान्स्टीट्यूशन के बन जाने के बाद उनको यहां का शहरी बनने का कोई हक़ नहीं रहता। मैं समझता हूं कि इसमें कोई ऐसी तरमीम होनी चाहिए कि वह जिस वक्त भी आवें, उन्हें यहां का शहरी तसव्वुर किया जाये। इसमें एक बात और भी है, इस वक्त ईस्ट बंगाल से गैर-मुस्लिम लोग वेस्ट बंगाल में आ रहे हैं। तो अगर हमारे विधान में यह पाबन्दी लगा दी गई कि इस कान्स्टीट्यूशन के पास हो जाने के बाद वह नहीं आ सकेंगे तो उनके आने की रफ्तार बहुत तेज हो जायेगी। हम पहले ही यहां पर जो रिफ्यूज़ीज आ रहे हैं, उनकी अच्छी तरह से पूरी सम्भाल नहीं कर पा रहे हैं, इस ख्याल से भी मैं ठीक समझता हूं कि इस मद में मुनासिब तरमीम होनी चाहिए।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि फंडामैन्टल राइट्स यानी जो हमारे बुनियादी हक़ूक हैं, उनका जिक्र तो बड़े शानदार तरीके से किया गया है, मगर कई जगह बन्धन लगाकर असली शान को कम कर दिया गया है। यहां सेठ दामोदरस्वरूप साहब ने अपनी पार्टी की तरफ से एक अमेंडमेंट पेश की

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

थी, जो गिर गई थी। उनका अमेंडमेंट पेश करने का मकसद यह था कि यह असेम्बली, जिसका चुनाव मुख्तरका इन्तखाब से नहीं हुआ, और दूसरे अडल्ट फ्रैन्चाइज़ से नहीं हुआ। इसलिए यह जनता को प्रतिनिधि नहीं। हम उनके साथ मुत्तफिक नहीं हुए, यानी हाउस ने उनकी तरमीम को गिरा दिया। मगर यह बात तो बिल्कुल साफ है कि अंगरचे हमारी असेम्बली का चुनाव मुश्तरका नहीं हुआ और अडल्ट फ्रैंचाइज से भी नहीं हुआ, मगर इस विधान सभा को विधान बनाते वक्त जनता का ख्याल तो रखना ही है, जैसा कि सेठ साहब के ऐतराज़ का जवाब दफा 9 से 13 तक, जहां जनता के हक़ूक का जिक्र किया गया मिलता है, मसलन मज़हब की बराबरी, नस्ल की बराबरी, जाति की बराबरी यानी जाति की बिना पर कोई तमीज़ नहीं होगी, छुआछूत नहीं मानी जायेगी, तकरीर की आज़ादी होगी, सजा के पाने में किसी मज़हब या किसी फ़िरके का ख्याल नहीं किया जायेगा। यह सब बातें रखी गई हैं और बहुत अच्छी यह सब बातें हैं मगर कुछ बन्धनों पर मुझे ऐतराज़ है। मिसाल के तौर पर दफा 13 में इस चीज की आजादी दी गई है, सारे देश में बिना लिहाज किसी प्राविन्स में आने-जाने की आज़ादी है। जायदाद हासिल करने की या फरोख्त करने की आज़ादी है। यह तमाम बातें दी हुई है। मगर इस दफा 13 की मद 5 में जो पाबन्दी लगा दी गई है, वह इसमें हरगिज़ नहीं होनी चाहिए। इस बन्धन की मौजूदगी में यह जो तमाम बुलन्द पाया कि फ़िकरे रखे गऐ हैं, इनमें कमी वाकई हो जाती है। इस वक्त भी हमें यह शिकायत है कि हमारे जो भाई पाकिस्तान से आये हैं, चाहे इसे कोई माने या न माने मगर मेरा यह निश्चय है कि कहीं-कहीं इनके साथ बर्ताव किया भी गया है, मगर फर्क जरूर रखा गया है और उनका वहां बसना पसन्द नहीं किया गया है। वह कहीं भी जाये और आज़ादी से और आराम से बसें, इसमें रुकावटें जरूरी कहीं न कहीं डाली गई हैं। इसलिए इस रिफ्यूजी नुक्तेख्याल से भी आज़ादी से देश भर में आने-जाने और जायदाद के लेन-देन पर कोई ऐसा बंधन नहीं होना चाहिए। जो लोग आराजी हासिल नहीं कर सकते, उनको जमीनें हासिल करने की आजादी हासिल होनी चाहिए। इसके मुतल्लिक हमारे पास चारों तरफ से तार आ रहे हैं कि इस बन्धन को हटा देना चाहिए, ताकि यह पुरानी तफरका की बीमारी दूर हो जाये।

तीसरी बात में ज़बान में मुत्तल्लिक कहना चाहता हूं। यह ज़बान का सवाल अहम तो बड़ा है, मगर में इसको इतना पेचीदा नहीं समझता था जैसा कि हमारे विद्वानों और रिसर्च स्कालर्ज़ ने इसको पेचीदा बना दिया है, जब तक यह सवाल इस शक्ल में मेरे सामने नहीं आया था, मैं हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई फर्क नहीं समझता था। मुझे कभी यह ख्याल भी नहीं आया था कि हिन्दी एक अलहदा ज़बान है और हिन्दुस्तानी अलहदा ज़बान है। हम सिलसिले में मुझे अपना ही पंजाब का एक शेर याद आता है: ''चंगा है सी अन्जानियां, सपनापई जद जानियां।'' यानी इसका न जानना अच्छा था। अब जब इसको जाना है, तब बड़ा ही झंझट सा पड़ गया है कि इसके मुतल्लिक क्या किया जाये। मगर यह बात बिल्कुल साफ है। प्रिंसिपल के तौर पर मैं समझता हूं, हमें अपने कान्स्टीट्यूशन में यह मान लेना चाहिए कि लिपि एक हो। सारे हिन्दुस्तान की लिपि एक हो और ज़बान एक हो, जैसा कि मेरे दोस्त सेठ गोविन्ददास जी ने और कुछ दूसरे दोस्तों ने कहा है। मैं इस बात को मानने वाला हूं कि हमारा यह जो पहला कान्स्टीट्यूशन है। इसको राष्ट्रीय-भाषा में पास करना चाहिए। यह मेरा निश्चय है और यह मेरी पक्की राय है। वैसे जहां तक जबान का ताल्लुक है, यह थोड़ी-थोड़ी जगह पर बदलती रही है, इसमें कोई शक नहीं है। ज़बान के सवाल के बारे में कुछ तकलीफ़ नजर आ रही है। कुछ ऑनरेबुल मेम्बरों ने तो यहां तक धमकी दे दी है कि अगर फलां फैसला हुआ तो हमें यहां बैठना भी छोड़ना पड़ेगा; या हमें इसके खिलाफ कुछ प्रौटेस्ट करना पड़ेगा; हमारी फौजों में रोमन लिपि राइज है, उर्दू लिपि भी है और अंग्रेजी लिपि भी है। अगर हमें एक ही लिपि लेनी है, तो हमें देखना होगा कि इन तीनों में कौन सी लिपि ऐसी है, जिसमें हमारी सारी ज़बानें लिखी जा सकें या अच्छी तरह प्रचलित हो सकें। मैं तो यहां तक जानता हूं कि अगर तमाम सूबाई ज़बानों वाले इस बात को मान जायें तो मैं इसके लिए तैयार हूं कि बंगाल वाले बंगला लिपि छोड़ दें, तमिल, तेलगू, सब अपनी-अपनी लिपियां छोड़ दें और सब ज़बानें एक ही देवनागरी लिपि में लिखी जायें तो मुझे इसमें कोई ऐतराज नहीं है। मौजूदा हालत में यह चीज कुछ मुश्किल सी नजर आती है, मगर इससे यगानियत हो सकती है। अगर हमारी कोई चीज नहीं मिलती तो एक चीज तो मिल जाये, जिस पर हम सब मुत्तफिक हो जायें। यानी एक लिपि हो, जिसमें हम अपनी ज़बानों को लिखें तो कई झंझटों से हम बच सकते हैं। अगर ऐसा न हो सके तो हर एक सूबे की लिपि को अपने-अपने सूबे में

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

एक जैसी महत्ता तो मिलनी ही चाहिए। बाकी सवाल रह जाता है, जबान का। इसके मुतल्लिक मैं यह कहना चाहता हूं कि यह जो विधान है, मैंने इसके सारे तरजुमे देखे हैं। हिन्दी का तरजुमा भी देखा है और उर्दू और हिन्दुस्तानी का तरजुमा भी। हिन्दी के बारे में मैंने 'देखा है' इसलिए कहा है कि मैंने अपने इन दोस्तों से बातें कीं, जो यहां हिन्दी के हामी है। वह भी मुझे हिन्दी के तरजुमे में से इसका मतलब नहीं समझा सके। हमारे पंजाब के मशहूर शायर डाक्टर इक़बाल फारसी में नज़में लिखते थे। मैंने उनकी फारसी की कई किताबें पढ़ी हैं। मगर जब उन्होंने देखा कि मेरी फारसी की शायरी हिन्दुस्तानियों के लिए एक जंगल का फूल है, जिसकी कोई खुशबू नहीं लेता, तो फिर उन्होंने उर्दू में लिखना शुरू किया। उर्दू की नज़मों में उन्होंने जो ज़बान इस्तेमाल की, अगर आप गौर से पढ़ेंगे, तो आपको पता लगेगा कि सिर्फ लोगों को अपने ख्यालात समझाने के लिए उनको कितना ज़बान की सादगी की तरफ आना पड़ा। आप सुनिए, मैं उनका एक शेर पढ़ता हूं।

''इकबाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों में मोह लेता है,
गफतार का वह गाजी बन तो गया, करदार का गाजी बन न सका।''

अब बताइये, इसे आप उर्दू कहेंगे या हिन्दी कहेंगे या हिन्दुस्तानी कहेंगे। उपदेशक और मोह किस जबान के अलफाज़ हैं। अगर वह ज़बान जिसमें मेरे मित्र चौधरी रणवीरसिंह ने भाषण दिया, हिन्दी है तो मैं हिन्दी का हामी हूं। हमें अब यह देखना है कि कौनसी बात प्रैक्टिकल और अमल में आने वाली है। अगर आप पंजाब की बात पूछें तो पंजाब में जितने अखबार हिन्दी के हामी हैं, सब उर्दू में छपते है; मगर वहां जाती या अपनी आसानी का सवाल नहीं। सवाल यह है कि आयन्दा के लिए कौन सी बात ठीक और काबिल-अमल है। मेरा मतलब यह है कि हमारी ज़बान सादा हो। और आम फहम हो। मैं यह तजवीज़ करता हूं कि एक कमेटी बनाई जाये जो टर्म्स बनाये और जब टर्म्स बना ले और ज़बान की सादगी का फैसला हो जाये, तो मेरा ख्याल है कि इससे कोई मुश्किल नहीं रहेगी कि हम ज़बान का जो मसला है, उसको आसानी से हल न कर सकें। हममें यह थोड़ा सा नुक्स है और खास तौर पर पंजाब में कि हमारी हर एक बात मज़हबी रंग पकड़ जाती है। हम एक दूसरे के खिलाफ मज़हब की बिना पर टूट जाते हैं। बात सारी होती है, पर हम उसको मज़हबी रंग देकर बिगाड़ लेते हैं। लिंग्विस्टिक बेसिस पर सूबों की तकसीम की बात चल रही है, जिसके

मुतल्लिक हमारा विधान बहुत हद तक चुप है। सिर्फ थोड़ा सा इशारा दिया है। पंजाब में इस बात ने भी एक मजहबी रंग अख्तियार कर लिया है, हालांकि यह बात बड़ी सादी है। तो जैसा कि सुबह मेरे एक भाई ने कहा था, यह झगड़े का मामला है, इसको मुल्तवी कर देना चाहिए। मगर इस प्रिंसिपिल को मान लेना चाहिए कि जो भी ज़बानें डैवलप हो चुकी हैं, अगर ज़बान की बिना पर तकसीम हो तो उनका भी ख्याल रखा जाये। वक्त हो गया है, मगर मैं माइनोरिटीज के मुतालिक भी कुछ कहना चाहता हूं। मैंने तो इस मसले पर कुछ ज्यादा ख्याल नहीं किया है, क्योंकि मैं कांग्रेस का काम करने वाला हूं। अब भी सूबे की कांग्रेस का प्रेसीडेंट हूं। मैं समझता हूं कि जहां तक कांग्रेस की हुकूमत का ताल्लूक है, उसमें माइनोरिटीज़ के हक़ूक महफूज रहेंगे। मगर इस वक्त रिजर्वेशन का मामला बहुत हमारे सामने आ रहा है। यह ठीक है कि मैं मजहबी हैसियत से मारनोरिटी कम्यूनिटी से ताल्लुक रखता हूं और मुझे इस बात का फख्र है कि मैंने इस सवाल को कहीं फिरकेवाराना नजर से नहीं देखा। इसके मुतल्लिक मैं आपके सामने यह कहना चाहता हूं कि सिक्ख कौम इस बात पर फख्र करती है कि वह अपने देश को एक आज़ाद नेशन बनाने के लिए हमेशा बहादुरी से कुरबानियां करती रही है। इस वजह से पूज्य पंडित मालवीय जी ने यह कहा था कि हर एक हिन्दू के घर में एक लड़का सिक्ख होना चाहिए। श्री सावरकर साहब ने एक बार डॉ. अम्बेडकर साहब की जाति वालों को यह सलाह दी थी कि अगर तुम सिक्ख बनना चाहो तो बेशक बन जाओ। इस पर मैंने उस वक्त सावरकर साहब से पूछा था कि आपने एक हिन्दू और आर्यसमाजी होते हुए यह सलाह कैसे दी; तो सावरकर साहब ने यह जवाब दिया (*एक आवाज : सावरकर साहब आर्यसमाजी नहीं हैं।*) तो मैं यह लफ्ज वापस लेता हूं। खैर, उन्होंने मुझे जवाब दिया: ''और कोई वजह नहीं है। मैंने सिक्ख धर्म की स्टडी नहीं की है। मगर इतनी बात जानता हूं कि जब मैं कालेपानी में था, तो वहां बहुत से काफी बुजुर्ग और बूढ़े सिक्ख सियासी कैदी थे। उनमें मैंने देशभक्ति, कौमीसेवा और कुर्बानी का अथाह जोश देखा है; उसको देखकर मैं कहता हूं कि यह लोग अच्छे हैं। इसलिए मैंने डा. अम्बेडकर की जाति के लोगों को सिक्ख बनने की सलाह दी थी''। मैं माइनोरिटीज़ के नुक्तेख्याल से भी लेता हूं कि बगैर वेइटेज के रिजर्वेशन माइनोरिटी के लिए कोई मुफीद नहीं है। मैं तो यह अच्छा समझता हूं कि अगर हमारे दिल साफ हो जायें और एक दूसरे पर ऐतबार हो जाये तो कई ऐसे प्राविज़न्स भी रखे जा सकते हैं जो हमें एक नेशन बनने में मदद दे सकें। गवर्नर्स और प्रेसीडेंट

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

को यह अख्तियार दिए जा सकते हैं कि जिस जगह माइनोरिटीज़ चुनाव में अपना मुनासिब हिस्सा हासिल न कर सकें, वहां नोमिनेशन के जरिये से उनको मुनासिब हिस्सा दे दें। रिजर्वेशन के बगैर कोई ऐसा तरीका अख्तियार किया जाये, तो मैजौरिटी का इम्तिहान भी हो जाये और एक नेशन बनने की तरफ हमारा कदम भी बढ़े। ब्रिटिश गवर्नमेंट के मातहत अलहदा चुनाव और रिजर्वेशन वगैरह के उसूल पर अमल करके हम पहले देख चुके हैं। एक नेशन बनते-बनते हमारा देश टुकड़ों में बंट गया। ''मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की'' अब हमें समझ आनी चाहिए कि हम किस तरफ कदम रखें, ताकि किसी वक्त जाकर हम एक नेशन बन सकें। मैजोरिटी को यह देखना चाहिए कि अगर माइनोरिटीज़ की मेम्बरशिप में कमी रह जाती है, तो वह दूसरे जरिये से पूरी कर दी जाये। इस ख्याल से हम इस तरह चलें जिस तरह हमारी एक मुतहदा नेशन बन जाये।

वक्त नहीं है, वरना मुझे इस पर बहुत सी बातें कहनी थी।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के एक संशोधन की सूचना मुझे मिली है, जो इस प्रकार है:

> ''विधान का मसौदा एक ऐसी विशिष्ट समिति (Select Committee) के सपुर्द कर दिया जाये, जिसे माननीय अध्यक्ष उचित समझें और मनोनीत या निर्वाचित करें और वह समिति इस पर अपनी रिपोर्ट उस समय तक भेज दे जिसे कि माननीय अध्यक्ष ठीक समझें।''

मैं इस संशोधन को अनियमित घोषित करता हूं, क्योंकि विधान के मसौदे पर विचार करने एवं उसे स्वीकार करने के सम्बन्ध में जो नियम हैं, उनमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि इसे विशिष्ट समिति को सुपुर्द किया जाये। इस संशोधन को स्वीकार करने से इन नियमों में, जो कि पहले से ही बनाये जा चुके हैं, संशोधन होगा, कार्यवाहक समिति के समक्ष इसे बिना रखे, हम ऐसा नहीं कर सकते। केवल इतना ही नहीं, नियम 31(4) में यह कहा गया है:

> ''The Chairman may disallow any amendment which he considers to be frivolous or dilatory.''

इस संशोधन को मैं विलम्बकारी समझता हूं और इसलिये इसे अनियमित ठहराता हूं।

***माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय** (आसामः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस विधान निर्माण में डा. अम्बेडकर एवं मसौदा-समिति के अन्य सदस्यों ने जो कठिन परिश्रम किया है, उसके लिये कृतज्ञताज्ञापन में मैं भी सभा का साथ दूं, यह वस्तुतः मेरे लिये परम सौभाग्य की बात है। अवश्य ही ये महानुभाव हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

विधान का यह ढांचा, जो मसौदे में रखा गया है, मुझे तो अच्छा ही जंचता है; पर कई विस्तार की बातों को लेकर तथा अन्य कई आवश्यक विषयों में इसमें थोड़ा संशोधन करना जरूरी है। इस विधान द्वारा भारतवर्ष को अपनी अनेकता में भी एकता प्राप्त होती है। विभिन्न जाति, रंग, धर्म, भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता रखते हुए भी यह भारतवर्ष इस विधान द्वारा एक सुसम्बद्ध राष्ट्र का रूप प्राप्त करेगा, जो यहां के सभी निवासियों के हितों के लिये वह सदा सम्मिलित रूप से कार्य करेगा। ऐसा सुन्दर विधान बनाना कोई आसान काम नहीं है। यूरोप की तरह भारत भी एक ऐसा महादेश है जिसमें कई राज्य-प्रदेश है। यूरोप के विभिन्न राज्य-प्रदेश तो अब तक भी एक संयुक्त राष्ट्र का रूप न अपना पाये, पर ईश्वर की कृपा से एवं अपने नेताओं की बुद्धिमत्ता से भारतवर्ष को प्रादेशिक वैभिन्य होते हुये भी ऐक्य—एक राष्ट्र का रूप—प्राप्त है। केवल कानून द्वारा सभी विभिन्नताओं का अन्त कर और सभी प्रदेशों को एक सांचे में डाल देने से ही हमें यह ऐक्य नहीं प्राप्त हो सकता है। ऐसा प्रयास तो एक भयानक क्रांति पैदा कर देगा और इससे देश में सर्वत्र एक बड़ी विभीषिका छायेगी। यह ऐक्य हम क्रमिक विकास द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं जैसी कि विधान में व्यवस्था की गई है।

अल्पसंख्यकों के लिये, कतिपय विशेष क्षेत्रों के लिये तथा पर्वतीय जातियों के लिए ईश्वरोपासना सम्बन्धी स्वातंत्र्य देने की जो व्यवस्थाएं विधान में रखी गई हैं, वह इस क्रमिक विकास की आवश्यक सीढ़ियां हैं, जिनको पार करके ही हम अपनी विभिन्नताओं के होते हुए भी ऐक्य प्राप्त कर सकेंगे। अपने इस ऐक्य के ढांचे में अपनी विभिन्नताओं को स्थान देना भी जरूरी है, यह मानकर हमारे नेताओं ने तथा हमारे बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने जो बुद्धिमानी दिखाई है, उसकी सभी लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं और करेंगे। स्वयं भगवान इसी पद्धति पर चलते हैं। उन्होंने जो सृष्टि रची है, उसमें सर्वत्र विभिन्नताओं को रखते हुये ही उन्होंने एक समन्वय रखा है। परामर्शदातृ-समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल को मैं धन्यवाद देता हूं कि

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]

उन्होंने अल्पसंख्यकों और विशेष-पर्वतीय क्षेत्रों की आवश्यकताओं को समझा और तदनुसार व्यवस्था की।

मसौदा-समिति को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूं कि इसने आसाम के उन पहाड़ी जिलों के लिये, जिन्हें कि विधान की छठी अनुसूची में स्वायत्तशासी जिला कहा गया है, जिला-परिषदों के निर्माण का सुझाव स्वीकार किया। इन पहाड़ी जिलों को, जिनमें कि पहाड़ी लोग ही बसे हुये हैं, इस विधान के अधीन अपनी संस्कृति एवं गुण के अनुसार समुन्नति करने का अब पूरा अवसर प्राप्त हो सकेगा। मेरा विश्वास है कि इस व्यवस्था का परिणाम बड़ा ही सुन्दर होगा, अगर इन स्वायत्तशासी जिलों को इस प्रकार विकसित किया जा सकेगा कि वे अपने ढंग पर अपनी समुन्नति कर सकें और यह सब कर सकें बिना उस उद्देश्य को कोई बाधा पहुचाए, जो कि इस विधान का आधार है। यद्यपि इन पर्वतीय जातियों की संख्या बड़ी कम है, पर ये चिरकाल से अपनी शासन-व्यवस्था स्वयं ही चलाती रही हैं। इन प्रदेशों के विकास के लिये विधान में जो योजनाएं रखी गयी हैं, उनको कार्यान्वित करने के लिये अगर केन्द्र उचित रकम लगावे, तो इससे भावी भारत को निश्चित रूप से लाभ ही होगा। मसौदे की छठी अनुसूची को कुछ और ठीक करना होगा। आगे चलकर इस सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये जायेंगे, आशा है, सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

डा. अम्बेडकर ने तथा और लोगों ने यहां जो यह विचार व्यक्त किया है कि केन्द्र को खूब मजबूत बनाना चाहिये, उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं, किन्तु विभिन्न प्रदेशों को कमजोर बनाकर केन्द्र को असंतुलित रूप से सशक्त बनाया जाये, इसका मैं घोर विरोधी हूं। ऐसा करने से तो अपना राज्य एक ऐसे विकट आदमी की तस्वीर बन जायेगा, जिसके अवयवों में कोई सामंज्जस्य न हो—जिसका सिर बहुत ही बड़ा हो और अंग बिल्कुल ही दुर्बल-पतले हों। ऐसा विशाल सिर तो इस दशा में टिका ही नहीं रह सकता।

अनुच्छेद 131 के सम्बन्ध में जो संशोधन हमारे सामने छपे हुए रूप में आए हैं, उनको पढ़ने से पता चलता है कि मसौदा-समिति यह चाहती है कि शासकों की नियुक्ति प्रधान द्वारा हो। इसलिए शक्तियों को केन्द्रित करने का विचार किया गया है। मुझे आशा है मसौदा-समिति अपने मत पर फिर से विचार करेगी और इस संशोधन को रखना वांछनीय न समझेगी। मेरी समझ से तो इस देश ने बहुत दिन पहले से ही इस विचार का परित्याग कर दिया है कि मनोनीत शासकों को

व्यापक विवेक-मूलक शक्ति प्रदान करके रखा जाये। मसौदा-समिति ने भी इस सम्बन्ध में एक दूसरा सुझाव यह रखा है कि राज्य विधान-मण्डल के सदस्यों द्वारा चुने हुए चार अभ्यर्थियों की तालिका से किसी एक को प्रधान, शासक नियुक्त करे। कई सदस्यों ने इसके पक्ष में यह तर्क उपस्थित किया है कि निर्वाचित शासक और साथ ही निर्वाचित उत्तरदायी प्रधानमंत्री की व्यवस्था रखने से हो सकता कि दोनों में संघर्ष पैदा हो और शासन में शैथिल्य आ जाये। पर यह भी बात है कि व्यापक विवेक-मूलक शक्तियों के साथ मनोनीत शासक के होने से शासन में बाधा और अवरोध भी उपस्थित हो सकते हैं। मंत्रि-मण्डल का मैं स्वयं सदस्य रह चुका हूं और मुझे आठ मनोनीत शासकों का अनुभव है। मेरा अपना तो प्रबल मत यह है कि निर्वाचित शासक की व्यवस्था रखना कहीं अच्छा है। खैर, इस बारे में पूरी तौर पर विचार हम उस समय करेंगे, जब अनुच्छेद 131 से सम्बन्ध रखे जाने वाले संशोधन सभा में उपस्थित किये जायेंगे। उस समय मुझे इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक अपना मत व्यक्त करने का मौका मिलेगा। अर्थ सम्बन्धी बातों में, विशेष करके छोटे प्रान्तों के सम्बन्ध में, यह मसौदा बड़ा ही असन्तोषप्रद है। प्रान्तों के साथ इससे न्याय नहीं हुआ है। आसाम और उड़ीसा जैसे गरीब प्रान्तों को तो विशेष रूप से असन्तुष्ट होने का कारण है। इन प्रान्तों को आर्थिक दृष्टि से दुर्बल नहीं बनाना चाहिए। शरीर का एक भी अंग अगर कमजोर हुआ तो उससे सारा शरीर कमजोर हो जायेगा। अगर भारतवर्ष को जीवित रहना है, समृद्ध होना है तो, हमें उसके अंगभूत प्रदेशों को स्वस्थ और सम्पन्न रखना होगा। मैं अपने मन्तव्य की ओर आता हूं। मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 253 तथा 254 के प्रावधान हमें पसन्द नहीं हैं। इनको प्रायः उसी भाषा में रखा गया है जिसमें कि वे भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 140 में हैं। भारत सरकार की सारी सद्भावनाएं कागज़ों तक ही सीमित रही है और उड़ीसा तथा आसाम जैसे पिछड़े प्रान्त आज भी अपनी उसी दशा में पड़े हैं। इस साल भी केन्द्रीय सरकार की आर्थिक नीति से हमारे आसाम प्रांत को जबर्दस्त धक्का लगा है। हमें बड़ी आशायें थीं कि हमारी प्राथमिक आवश्यकताएं—जैसे कि जाति-निर्वाण सम्बन्धी विभिन्न कामों की शिक्षा देने के लिए शिक्षा-संस्थाओं के भवन निर्माण का काम—अब पूरी की जायेंगी, पर हमें अब यह बताया गया है कि इन कामों को अभी कुछ काल के लिए स्थगित कर देना पड़ रहा है। भारत की सुरक्षा के लिए तथा उन दुखियों को मदद पहुंचाने के लिए, जो कि पाकिस्तान की सीमा पर आबाद हैं, मौके की जगहों पर बड़े-बड़े रास्तों और सड़कों का निर्माण बड़ा ही जरूरी है और

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]

इनके निर्माण की योजनाएं भी स्वीकृत हैं, पर शायद इसलिए ही उसको उस शीघ्रता से कार्यान्वित नहीं किया जा रहा है, जितनी गति से उनका कार्यान्वित करना आवश्यक है। हम यहां यों कह रहे हैं कि हमें यह बताया गया है कि इन योजनाओं के लिए जो रकम अपेक्षित है, उसका चतुर्थांश भी इस साल हमें उपलब्ध नहीं हो सकेगा। हमारी महती संस्था कांग्रेस की यह घोषणा है कि हमारा यह उद्देश्य है कि सहयोगिता के सिद्धान्त पर समस्त देश की समृद्धि बढ़ाई जाये, किन्तु जब ग्रामों की सर्वतोमुखी समुन्नति के लिए सहयोगिता-सिद्धान्त के आधार पर ग्राम्य-केन्द्रों को स्थापित करने की बात आती है, तो वह रकम नहीं मिलती है जो इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए अपेक्षित है। हमारी आसाम सरकार ने प्रांतीय सूची के सभी साधनों से कर संग्रह करके जहां तक हो सकता था, अपना कोष बढ़ाने की कोशिश की, किन्तु उसे अभी भी अपने ही खर्च के लिए एक करोड़ की कमी है। इस संबंध में यह मालूम होना चाहिए कि प्रान्त की कुछ आय चार करोड़ से कुछ ही ज्यादा होती है। पर यदि केन्द्रीय सरकार चाय के निर्यात-कर को खुद न ले लेती, तो आसाम के पास अपने व्ययों के लिए पर्याप्त रकम होती और उसे केन्द्र से भीख न मांगनी पड़ती। चाय और पेट्रोल दोनों ही आसाम में पैदा होते हैं। इन दोनों चीजों का निर्यात-कर आसाम को मिले—और यह रकम करीब आठ करोड़ होती है, जो केन्द्रीय सरकार की थैली में चली जाती है—तो उससे हमें अपनी समुन्नति सम्बंधी सभी योजनाओं के खर्च लिए काफी रकम आ जाती। यह निर्यात-कर, कम से कम इसका एक विशेष भाग तो हमें मिलना ही चाहिए और आखिर वह कौन सा कारण है, जिससे कि हमें नहीं दिया जाता?

इन सभी प्रश्नों पर छानबीन करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की गई थी और आसाम के प्रधानमंत्री श्री जी.एन. बारदोलोई के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि-मण्डल भी इस समिति से मिला। समिति ने यह तो स्वीकार किया कि जूट के निर्यात-कर का एक अंश बंगाल को मिलना चाहिए (इसका एक लघु अंश आसाम को भी मिलता है) और यह भी स्वीकार किया कि तम्बाकू के निर्यात-कर का एक अंश मद्रास को भी दिया जा सकता है, पर चाय और पेट्रोल के निर्यात-कर से कुछ आसाम को भी दिया जाये, इसे उसने अवांछनीय समझा। क्या यह व्यवहार उचित और समान है? केन्द्र ने आसाम के लिए ऐसी व्यवस्था

लागू कर दी है कि उसे केन्द्रीय दान-सहाय्य पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हम लोगों की समझ में यह बात नहीं आती की आखिर यह भेदभाव क्यों बरता जाता है? ब्रिटिश शासन में कई वर्षों तक आसाम ने केन्द्रीय अधिकारियों के इस अन्याय के विरुद्ध गला फाड़-फाड़कर अपना रोना रोया है। किन्तु हमारे रुदन पर, हमारे अन्याय प्रतिरोध पर केन्द्र ने कभी कोई ध्यान नहीं दिया। आखिर हमारे प्रान्त को, जिसे आत्मनिर्भरता के लिए काफी रकम मिल सकती है, आप क्यों स्थायी रूप से भिखारी की दशा में रखना चाहते हैं? आशा है, श्रीमान्, कि केन्द्र को मजबूत बनाने की ऐसी किसी भी व्यवस्था का, जिससे कि प्रान्तों को उनके उचित अधिकारों से वंचित रखा जाता हो, यहां कोई समर्थन नहीं करेगा। मुझे विश्वास है, यह न्याय-परायण सभा समुचित रूप से सहानुभूतिपूर्वक हमारी बात पर विचार करेगी और यह देखेगी कि हमारे प्रान्त के साथ न्याय हो। सच्चाई से हमें दूर नहीं भागना चाहिए।

मैं खुद समझता हूं कि अधिकारी लोग अन्य बातों को लेकर इतने व्यस्त थे कि अतीत काल में वे इस बात की ओर ध्यान न दे सके, जो कि आसाम के लिए एक जीवन-मरण की बात है। आज हम सभी माननीय सदस्यों से आग्रह करते हैं कि अब वह हमारा उद्धार करें। यह बात न भूलनी चाहिए कि आसाम सीमावर्ती प्रान्त है, जिस पर चारों तरफ से आक्रमण हो सकता है। समस्त भारतीय संघ का यह कर्त्तव्य है कि दुर्दिन आने के पूर्व अभी से ही वह इस आशंका का समाधान कर ले। भारत के लिए यह भी आवश्यक है कि सीमावर्ती क्षेत्रों में वह आवश्यकता की सारी वस्तुएं पहुंचाये ताकि वहां के निवासी सन्तुष्ट रहें अन्यथा विरोधी लोग तरह-तरह की मुसीबतें पैदा करेंगे जिनके लिए हमें उस रकम से दस गुनी रकम खर्च करनी पड़ेगी जिसे कि शांति काल में खर्च करके हम इस ओर से निश्चित हो सकते हैं। यह बड़ी ही अदूरदर्शिता होगी, अगर हमारे आसाम प्रान्त को चाय के निर्यात-कर से वंचित रखा जाता है और पेट्रोल तथा चाय आदि के निर्यात-कर से उसे जो उचित अंश मिलना चाहिए, उसको कम कर दिया जाता है। अतीत काल में नौकरशाही सरकार ने आसाम और उड़ीसा जैसे पिछड़े प्रान्तों की समुचित मांगों की उपेक्षा की, पर अब तो यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि यह विधान-परिषद् भी उस अन्याय को जारी रहने देगी, जो कि विदेशी सरकार ने हमारे साथ किया है। आशा है, श्रीमान् कि जब सभा के सामने इस अन्याय के प्रतिकार के लिए संशोधन उपस्थित किये जायेंगे, तो इस महत्ती सभा के सभी सदस्य उनका पूर्णतः समर्थन करेंगे।

[माननीय श्री जे.जे.एम. निकल्स राय]

अपनी वक्तृता समाप्त करने से पूर्व मैं यह बात भी कहूंगा कि चुनाव के लिए प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। सर्वत्र देशवासियों को यह अनुभूति मिलनी चाहिए कि वे अब स्वाधीन है और देश की शासन-व्यवस्था के निर्माण में उनका भी हिस्सा है। अतीत काल से कांग्रेस ने उन्हें यह आशा दे रखी है और अब अगर हम अपनी इस बात से हट जाते हैं, तो इससे लोगों में बड़ा असन्तोष फैलेगा और आन्दोलन खड़ा हो जायेगा। यह सच है कि गांव के सर्वसाधारण नागरिकों ने अभी बहुत कुछ नहीं सीख पाया है, पर यह राजनीतिज्ञों का कर्त्तव्य है कि सर्व-साधारण नागरिकों को वह सही दिशा में शिक्षा दें। अब हमने गणतंत्रीय सिद्धान्त को अपना लिया है और हमारे देश का कल्याण इसी में है कि यहां के सर्व साधारण नागरिकों को शिक्षित बनाया जाये और यह भरोसा रखा जाये कि वे अपना मताधिकार का प्रयोग ठीक-ठीक तरह करेंगे।

और भी बहुत सी बातें, आलोचनाएं मुझे यहां व्यक्त करनी है किन्तु मैं नहीं चाहता कि सभा का समय लूं। पर अपनी वक्तृता समाप्त करने से पहले मैं एक और बात जरूर कहूंगा और वह यह है कि अगर हमें एक गणतंत्रीय राज्य का निर्माण करना है, तो देश के हर व्यक्ति में, चाहे वह कितना भी गरीब और लघु क्यों न हो, यह अनुभूति भरनी होगी कि देश को और अच्छा बनाने में उसे भी अपना हाथ बटाना होगा, हिस्सा लेना होगा। हमें अपने देश में भ्रातृत्व की भावना पैदा करनी है, जिससे कि हमसे हर व्यक्ति, चाहे वह कितना भी लघु और तुच्छ क्यों न हो, अपने देश के लिए गर्व का अनुभव कर सके। जब हममें सच्चाई और भ्रातृत्व की भावना आयेगी, तो निश्चय ही ईश्वर भी हमें सहायता देगा।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, सर्व प्रथम आपके प्रति कृतज्ञताज्ञापन करूंगा कि इस वाद-विवाद में भाग लेने के लिए आपने मुझे भी कुछ समय दिया, जो कि यह अवसर मुझे मिलना है तब, जब यह वाद-विवाद प्रायः समाप्त हो रहा है। मैं जिन बातों को सभा के सामने रखना चाहता था, उनमें से अब कतिपय बातों का ही यहां उस संक्षिप्त समय के अन्दर उल्लेख करूंगा, जो मैं समझता हूं कि कृपा कर मुझे दिया गया है।

विधान के मसौदे पर विचार करने का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सभा के समक्ष जो भाषण डा. अम्बेडकर ने दिया है, वह वस्तुतः एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण

भाषण है। बड़ा ही स्पष्ट, प्रभावोत्पादक, चित्ताकर्षक, तर्क संगत यह भाषण था और मैं नहीं समझता कि इन गुणों की दृष्टि से इससे भी अच्छी वक्तृता हो सकती है। इसके लिए डा. अम्बेडकर को हजार बार बधाई है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने अपने भाग में जो कुछ कहा है, सभी मान्य है। उदाहरण के लिए आप प्रान्तीय स्वायत्तशासन को और केन्द्र तथा विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लीजिए। वस्तुतः उनका तर्क अधिकतर एकात्मक राज्य के पक्ष में है। उनका तो कहना है कि विधान में संघीय पद्धति और एकात्मक शासन-पद्धति के मध्य का मार्ग अपनाया गया है, पर इस मसौदे को पढ़कर अपना मत तो यह है कि एकात्मक राज्य व्यवस्था पर ही इसमें बहुत अधिक जोर दिया गया है। मेरे मन से देश के सुख और समृद्धि के लिए ऐसी व्यवस्था अनुकूल न होगी। हमारा देश एक बड़ा ही विशाल देश है; इसकी बहुत ही बड़ी जनसंख्या है और इसके प्रदेश दूर-दूर पर अवस्थित हैं। केन्द्र चाहे कितना भी इसके लिए चिन्ताशील क्यों न हों कि देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के साथ एकसा व्यवहार हो, पर जैसी स्थिति है, उसमें त्रुटियां रहेंगी ही। स्वभावतः इससे असन्तोष और संघर्ष पैदा होंगे। इसी कारण से कई राजनीतिज्ञ मनीषियों का यह मत है कि हमारे जैसे देश के लिए संघीय शासन-पद्धति ही अधिक उपयुक्त है। भारत में हमें यह आशंका न होनी चाहिए कि विभिन्न प्रदेशों के बीच अनावश्यक संघर्ष खड़े होंगे और देश की अखण्डता जाती रहेगी। इस आशंका के पक्ष में यहां अमेरिका का उदाहरण दिया गया है। आखिर अमेरिका में क्या हुआ? यह देश, जिस में चालीस रियासतें हैं और सबके सब स्वायत्तशासी, एक सुसम्बद्ध इकाई के रूप में मानव इतिहास के दो कठोरतम महायुद्धों का आघात सहन करने में समर्थ हुआ है। इसके सभी प्रादेशिक राज्य भी सदा एक बने रहे और इन दोनों ही महायुद्धों की युद्धोत्तरकालीन समस्याओं की सारी कठिनाइयों का इन्होंने सफलतापूर्वक सामना किया। और फिर आप रूस का उदाहरण लीजिए। वहां के सभी प्रादेशिक राज्य स्वायत्तशासी गणतंत्र है। कहा तो यह जाता है कि वैदशिक मामलों पर भी उनका नियंत्रण रहता है। इस देश में क्या हुआ? इतने स्वायत्तशासी प्रादेशिक राज्यों के होने पर भी इस देश ने गत महायुद्ध के भयंकर आघातों का सफलतापूर्वक सामना किया और आज भी वह एक सुविशाल राष्ट्र के रूप में वर्तमान है और इतनी कठिनाइयों

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

और कठोरता के होते हुए भी अपने कार्य-संचालन में समर्थ है। इसलिए इस सम्बन्ध में महत्त्व की बात यह नहीं है कि हमारी शासन-पद्धति क्या है या हम कितनी अधिक शक्ति केन्द्र को प्रदान करते हैं। यहां वास्तविक महत्त्व है चरित्रबल का—शासन संचालकों के चरित्रबल का तथा शासितों के चरित्रबल का। रूस से बहुत से स्वायत्तशासी प्रादेशिक राज्य है, पर वहां क्या हुआ? रूस में आज राज्य ही सर्वेसर्वा है। वहां केन्द्र ने इतने अधिकार ले लिये हैं कि वह उनसे बोझिल हो गया है। यही मानव स्वभाव है। जब तब यहां यह कहा जाता है कि हमारा विधान एकतंत्रात्मक हो जायेगा। किन्तु एक बार जहां यह एकतंत्रात्मक बना कि शासन की यही प्रवृत्ति होगी कि एकात्मक व्यवस्था ही बनी रहे—स्वभावतः यही होता है। मैं कहता हूं कि हमारे देश में जो स्थिति है, उसके लिए एकात्मक संघीय-शासन-व्यवस्था ही अधिक उपयुक्त है।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थितियां भिन्न-भिन्न है। इसलिए इनकी व्यवस्था उन्हीं लोगों द्वारा होनी चाहिये, जो इन स्थितियों के सन्निकट सम्पर्क में हों। इस सम्बन्ध में मैं केवल एक बात का उल्लेख करूंगा। जब प्रान्तों को स्वशासन के बहुत से अधिकारों से वंचित रखा जाता है, तो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित शासकों की यह व्यवस्था अपने प्रस्तुत विधान के अनुकूल नहीं है। माना कि शासक महज काठ की मूर्ति के रूप में रहेगा, पर उसकी स्थिति केवल एक वैधानिक प्रधान की होगी। उसके लिये निर्वाचन की लम्बी और कष्टप्रद प्रक्रिया बरती जाये। प्रान्त के लाखों नागरिक मतदान में शामिल हों, यह आवश्यक नहीं है। इसमें एक लम्बा खर्च तो होगा ही, पर उसके अलावा और भी बड़ी कठिनाइयां और मुसीबतें खड़ी होंगी। अवश्य ही शासक का निर्वाचन प्रान्त या रियासतों के ही किसी माध्यम (एजेंसी) द्वारा होना चाहिये और यह व्यवस्था उस प्रान्तीय स्वराज्य के बिल्कुल अनुकूल है, जिसका मैं हामी हूं। ऐसे माध्यम के लिए हम एक निर्वाचक-मण्डल बना सकते हैं जिसमें प्रान्तीय विधान-मण्डल के सदस्य, म्युनिसिपल और जिला-बोर्डों के सदस्य रखे जा सकते हैं; और मैं तो यहां तक प्रस्तुत हूं, यदि आप चाहते हों कि उसमें ग्राम-पंचायतों के सदस्य रखे जाये। इसमें कुल मिलाकर ज्यादा से ज्यादा पचास हजार से साठ हजार तक मतदाता आयेंगे और प्रौढ़ मताधिकार

की व्यवस्था रखने से तो मतदाता-संख्या करोड़ों तक पहुंच जायेगी। और फिर शासक भी अगर प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुना जायेगा, तो स्वभावतः यदा कदा उसके और मंत्रि-मण्डल के बीच, जो जनता की ओर बोलने का दावा करेगा, संघर्ष उपस्थित हो जाया करेगा।

प्रस्तावकर्त्ता ने कहा है कि मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनसे उन अधिकारों को कोई क्षति नहीं पहुंचती, पर वास्तविक बात तो यह है कि इन प्रतिबंधों ने अधिकारों को सर्वथा निष्प्राण कर दिया है। प्रस्तावक महोदय का कहना है कि इन प्रतिबंधों के—प्रत्येक के—समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का कम से कम एक फैसला तो पेश किया ही जा सकता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट में जब भारत-शासन-अधिनियम सन् 1935 की रचना की जा रही थी, तो उस समय वहां के राजनीतिज्ञों ने उसके पक्ष में जो तर्क रखा था, वह ऐसा ही था। उन्होंने कहा था कि उस अधिनियम में वह उन्हीं बातों का समावेश कर रहे हैं, जो ग्रेट ब्रिटेन में रूढ़ि के रूप में चली आ रही है। उनका कहना था, जिन बातों को अधिनियम में रखा जा रहा है, वह पहले से ही चालू थी और इसीलिये उन्हें अधिनियम में शामिल किया जा रहा है। यह कहना कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने अमुक प्रकार से निर्णय किया है और यह फैसला दिया है कि कई प्रतिबंध वैध हैं और सही है, इसलिये इन प्रतिबंधों को विधान में रखना ही चाहिये, एक बात है और यह कहना कि मूलाधिकारों के सम्बन्ध में अगर कोई प्रश्न खड़ा होगा, कोई मतभेद खड़ा होगा तो नागरिकों को यह अधिकार होगा कि वे उसके सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय मांगें, यह बिल्कुल एक दूसरी बात है। यदि जनता को यह अधिकार दिया जाये कि वह इस सम्बन्ध में सरकार से मतभेद होने पर सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय की मांग कर सकती है, तो इससे उनमें वास्तविक स्वातंत्र्य का भाव पैदा होगा और इससे सरकार पर भी एक हितकर नियंत्रण बना रहेगा, जो गणतंत्र में आवश्यक है।

मेरे कुछ मित्रों ने दावे के साथ यह कहा है कि प्रस्तुत विधान एक राजनैतिक विधान है। पर क्या वस्तुतः यह ऐसा है? मैं नहीं जानता। इसमें स्पृश्यास्पृश्य, मंदिर प्रवेश और धार्मिक शिक्षा के प्रश्नों के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। इसके लिये मैं विधान को या उसके रचयिताओं को दोष नहीं देता। मेरा तो कहना है कि विधान में इन सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में व्यवस्था रखना ठीक हैं किन्तु यहां

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

मैं एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक प्रश्न का उल्लेख करूंगा और यह प्रश्न है, धार्मिक शिक्षा का विधान। इसमें कहा गया है कि राजकीय विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं प्रदान की जायेगी। इस व्यवस्था के साथ-साथ प्रायः सभी प्रान्तों में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा भी चालू की जा रही है। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार धार्मिक शिक्षा के विरुद्ध है, सरकार इस बात के विरुद्ध है कि नागरिकों को उनके धर्म की शिक्षा दी जाये—चाहे वे धर्म की शिक्षा पाना ही क्यों न चाहते हों। इसलिये 15 वर्ष की उम्र तक, जब तक कि बच्चे प्रारिम्भक स्कूलों में पढ़ेंगे, उन्हें विद्यालय में अपने धर्म के सम्बन्ध में शिक्षा पाने का कभी अवसर न मिलेगा। किन्तु नागरिकों को अपने-अपने धर्मों की शिक्षा पाने का अधिकार है। इस अधिकार से राज्य की तटस्थता अथवा उसके असाम्प्रदायिक स्वरूप में कोई न्यूनता नहीं आती। राज्य उन लोगों पर कोई धार्मिक शिक्षा जबर्दस्ती नहीं लादेगा जो ऐसी शिक्षा नहीं पाना चाहते हैं। इससे जनता को यह सुविधा हो जायेगी कि अगर वह अपने बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा देना चाहें, तो दे सकते हैं।

अब, श्रीमान्, मैं अल्पसंख्यकों का प्रश्न लेता हूं। कुछ मित्रों ने कहा कि आरक्षा (reservation) की व्यवस्था अब बिल्कुल उठा देनी चाहिए; कुछ ने कहा कि इससे कोई लाभ नहीं इसलिए इसे उठा देना चाहिए और किसी ने कहा कि आरक्षा की चर्चा ही न होनी चाहिये। उनका कहना है कि आवश्यकता है, सद्भावना की न कि आरक्षा की। वस्तुतः यह सच है, श्रीमान्, कि सद्भावना अपेक्षित है, इस विस्तृत विधान को कार्यान्वित करने के लिये भी सद्भावना की आवश्यकता है। पर इस तर्क के आधार पर तो विधान के कई प्रावधानों को हटाकर सद्भावना से ही काम चलाया जा सकता है। फिर भी विधान में ये प्रावधान रखे गए हैं। आखिर सद्भावना हवा में तो नहीं रहेगी, उसके आधार के लिये कोई चीज़ होनी चाहिए। सद्भावना के लिये, उसके विकास के लिए आधारभूत कोई न कोई वस्तु होनी ही चाहिए और ये प्रारम्भिक अधिकार—ये मूलाधिकार तथा अल्पसंख्यकों के संरक्षण ही उसके आधार हैं। यही कारण है कि मेरा सम्प्रदाय आरक्षा की मांग करता है यद्यपि केवल आरक्षा से ही उनकी आवश्यकतायें नहीं पूर्ण होती है मेरा यह मतलब नहीं है कि इससे उन लोगों को सन्तोष होगा, जो विधान-मण्डल

में प्रतिनिधित्व चाहते हैं। वस्तुतः हम यह चाहते हैं कि विधान-मण्डल के समक्ष अपने विचारों को, अपनी भावनाओं को और आकांक्षाओं को सही-सही रूप में रखने का हमें अधिकार हो। जो लोग संयुक्त निर्वाचन के अधीन निर्वाचित होकर इन संरक्षित आसनों पर बैठे हैं। वे क्या अपने सम्प्रदाय के विचारों को यहां व्यक्त करने में समर्थ होंगे? जब मैं यह कहता हूं तो इसको लेकर हमें अतीत की गढ़ी बातों की याद नहीं दिलानी चाहिये। अतीत की चर्चा कर मैं मतभेद और विवाद का विषाक्त वातावरण नहीं पैदा करना चाहता। हमें इस प्रश्न पर स्वतन्त्र रूप से विचार करना चाहिये, इसके पूर्ण-दोषों को देखते हुये हमें यह विचार करना चाहिये कि इसका रखना ठीक है या नहीं। मेरे विचार से तो हमें न केवल संरक्षित स्थानों की ही, बल्कि पृथक निर्वाचन द्वारा उनकी पूर्ति का भी प्रावधान रखना चाहिये। यदि आज अल्पसंख्यकों को यह अधिकार देना चाहते हैं कि वह बहुसंख्यक सम्प्रदाय के समक्ष, विधान-मण्डल के समक्ष, देश के समक्ष अपने विचार सही रूप से रखें, तो इस प्रावधान के सिवाय अन्य कोई और उपाय मुझे तो नहीं दिखाई देता। पृथक निर्वाचन का यही अभिप्राय है। एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के बीच इससे कोई दीवार नहीं खड़ी होती है और अतीत काल में अगर कोई बखेड़ा हुआ था, तो उसका कारण यह निर्वाचन-पद्धति नहीं थी बल्कि और अन्य बातें थी। जैसा कि मैंने अभी कहा है, मैं अतीतकालीन बातों का उल्लेख नहीं करना चाहता। जब हम पृथक निर्वाचन की चर्चा करते हैं, तो साम्प्रदायिकता का अभियोग लगाया जाता है। इस सम्बन्ध में मैं एक कांग्रेसी मंत्री का कथन मात्र ही उद्धृत करूंगा जो अभी दस दिन पहले उन्होंने मद्रास के विधान-मण्डल में कहा है। किसी कॉलेज में विद्यार्थियों की भर्ती के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक प्रतिनिधान विषयक एक प्रश्न किया गया था। एक सदस्य ने मंत्री से यह प्रश्न किया:

> ''स्वयं हिन्दुओं के अन्दर भी साम्प्रदायिकता को स्थायी रखने और उसे प्रश्रय देने में मंत्री महोदय के लिए क्या औचित्य है?''

इसके उत्तर में शिक्षा मंत्री यह कहते हैं:

> ''सरकार ऐसा नहीं कर रही है। विभिन्न सम्प्रदाय पहले से ही वर्तमान हैं। जो चीज़ वर्तमान है, उसकी उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। लोग इन्हीं विभिन्न सम्प्रदायों में पैदा होते हैं और मरते हैं।"

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

फिर शिक्षा मंत्री ने यह कहा:

''सरकार साम्प्रदायिकता का अन्त कर देना चाहती थी, किन्तु विभिन्न सम्प्रदायों को विकास का समान अवसर प्रदान किये बिना ऐसा नहीं किया जा सका।''

बहुसंख्यक सम्प्रदाय के एक कांग्रेसी नेता ने यह मत व्यक्त किया है, जो आज इस देश के एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त के एक महत्त्वपूर्ण विभाग की देख-रेख करते हैं।

इसलिए, श्रीमान्, यही आज की वास्तविक स्थिति है। इन विभिन्न सम्प्रदायों को स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है और यह स्थिति हमारे देश के लिये कोई नई नहीं है। जब मैं नौजवान था, उस समय मिश्र देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि मैं बड़े ध्यान से देखा करता था। उन्होंने जब पहले स्वतंत्रता की मांग की, तो 'काप्ट्स' नामक एक सम्प्रदाय का वहां आविर्भाव हुआ। इस सम्प्रदाय ने राष्ट्रीय आन्दोलन के मुकाबले में एक दूसरा ही आन्दोलन चलाया। उन्होंने यह मांग की कि इस बात का उन्हें पक्का आश्वासन मिलना चाहिये कि स्वतंत्र होने पर उनके अधिकार सुरक्षित रहेंगे। तब मिश्र के नेता श्री जगलुक पाशा ने उन लोगों को बुलाकर कहा कि वे अपनी मांगों की तालिका बनाकर दें। यथा समय मांगों की तालिका लिखित रूप में उनके सामने आई और उन्होंने उन पर विचार किया। विचार कर लेने पर उन्होंने कहा कि केवल उन मांगों की पूर्ति से ही उनके अधिकारों की सुरक्षा नहीं होती। उन्होंने कहा कि इन मांगों की पूर्ति से तो उन्हें अपना मत व्यक्त करने का भी अधिकार नहीं प्राप्त होता है, उन्होंने उस सम्प्रदाय को कहा कि ''तुमने जो मांगा है, मैं उससे भी अधिक दूंगा''। यह व्यवहार था जो उस देश के अल्पसंख्यकों के साथ किया गया। उसके पहले ऐसा होता था कि जब भी मिश्र के सम्बन्ध में कोई बात चली नहीं कि 'काप्ट्स' लोगों की भी कुछ न कुछ बात सामने आई। किन्तु समझौते के दिन से ही यह सारी बातें बदल गई और आज तक हमें 'काप्ट्स' का नाम भी कभी नहीं सुनाई पड़ा। अब वे एक संतुष्ट वर्ग है और मिल-जुल कर एक जाति के रूप में रह रहे हैं। आशा है, सभा इस प्रश्न पर शान्तिपूर्वक विचार करेगी और किसी प्रकार की भावुकता को इसमें स्थान न देगी।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्तः जनरल): सभापति जी मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि अब एक घंटा कुल समय रह गया है। एक घंटा कुल समय वाद-विवाद के लिए अवशेष है, तो एक दिन और बढ़ा दिया जाये। बहुत से लोगों ने बोलने की इच्छा प्रकट की है और अब तक का जो हाउस है, उसमें कोई क्लोजर जैसा प्रस्ताव नहीं आया कि वाद-विवाद बन्द किया जाये। मालूम यह होता है कि लोग इस विषय में कुछ सुनना चाहते हैं प्रश्न ऐसे महत्त्व का है, जैसा कि कल श्री दिवाकर ने कहा था कि इस मामले में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। इसलिये कम से कम एक दिन और बढ़ा दिया जाये। केवल जो नाम आपके सम्मुख है, उन्हीं में से बहुत से लोग बोलेंगे।

मैं एक निवेदन और करना चाहता हूं। आज का पूरा समय आपने उन लोगों को दिया है, जिन्हें आप अल्पसंख्यक मानते हैं। अल्पसंख्यक लोगों ने अपनी बातें कही हैं, तो बहुसंख्यक लोग जो आपकी कल्पना में हैं क्या उन लोगों की संख्या के ही आधार पर छोड़ दिया जायेगा? या जो आपत्तियां उठाई गई है, उनका कुछ लाजिकल, तर्कसंगत उत्तर भी आना चाहिये कि जिससे संसार में प्रभाव पड़े कि जो निर्णय यहां हो रहे हैं, वह तर्क के आधार पर है, संख्या के बल पर नहीं। जो बातें कही गई है, उनका कोई उत्तर देना चाहता है, तो उसे इसका अवसर मिलना चाहिए। भाषा का प्रश्न है और दूसरी चीज़ें हैं। भारत का सम्बन्ध ब्रिटेन से क्या हो, यह ऐसे महत्त्व के प्रश्न है कि जिन पर यहां पर विस्तार से प्रकाश पड़ना चाहिए। इस कारण मेरा नम्र निवेदन यह है कि आप कृपा करके इसके लिए एक दिन का अवसर और दें। कम से कम एक दिन का समय अवश्य मिलना चाहिए, जिसमें और लोग भी बोल सकें।

उपाध्यक्षः आप एक दिन और चाहते हैं?

पं. गोविन्द मालवीय (संयुक्तप्रान्तः जनरल): मैं श्री अलगूराय शास्त्री के इस अनुरोध का समर्थन करता हूं। मेरी समझ से हम लोग एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण मसले पर विचार कर रहे हैं, जिसके लिए शायद हमें और अवसर नहीं मिलेगा। इसके विचार में हम तीन दिन लगा चुके हैं और अभी भी बहुत से सदस्य हैं, जिन्हें इस विषय पर अपने विचार सभा के समक्ष रखने हैं। मैं समझता हूं कि एक दिन बढ़ा देने में कोई बुराई नहीं है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई: जनरल): इस तरह तो कल फिर अनुरोध होगा कि एक दिन और बढ़ा दिया जाये। संशोधन आने पर हमें काफी मौका मिलेगा और हम इन सभी बातों की चर्चा कर सकेंगे। जो विषय सभा के सामने आज दो वर्षों से उपस्थित है उस पर भिन्न-भिन्न भाषाओं में तरह-तरह के विचार व्यक्त किये जा चुके हैं और यथेष्ठ प्रकाश या अंधकार, जो कहिए, इस पर डाला जा चुका है। मुझे उन सदस्यों से सहानुभूति है, जो इस मसले पर बोलना चाहते हैं और चाहते हैं कि सभा उनकी बात सुने, पर मैं कहूंगा कि ऐसे वाद-विवाद के लिए एक न एक समय तो हमें निश्चित ही कर लेना होगा, जिसके बाद उस पर हम और विचार नहीं करेंगे। एक दिन का समय हम इसके लिए पहले ही बढ़ा चुके हैं और मैं समझता था कि इतना समय इसके लिए काफी था। मेरा सुझाव है कि इसके लिए और समय नहीं बढ़ाना चाहिए।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): अगर ऐसा एक भी सदस्य बाकी रह गया है, जो प्रस्तुत विषय पर अपना मत व्यक्त करना चाहता है, तो उसे इसके लिए पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए मैं कहता हूं कि न केवल एक दिन बल्कि अगर कल सभा एक और दिन इसके लिए मांगे, वह भी मिलना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** मेरे पास तो 40 सदस्यों के नाम हैं, जो अभी बोलना चाहते हैं। मैं यह भी बतला दूं कि उन प्रमुख बातों का मैं एक विवरण रखता हूं, जिन पर कि सदस्य यहां बोलते हैं। मैं देखता हूं कि कम या बेशी 6 बातों के सम्बन्ध में सभी सदस्यगण बोलते हैं 30 सदस्य बोल चुके हैं और घुमा-फिरा कर सभी ने इन्हीं 6 बातों के सम्बन्ध में ही कहा है। अगर सभा को यह पक्का मालूम हो कि अब आगे बोलने वाले सदस्य इन 6 बातों के अलावा अन्य और बातों के सम्बन्ध में बोलेंगे, तब तो उनको समय देने में औचित्य है। मैं तो आप लोगों के हाथ में हूं। मैं समय बढ़ाने के लिए बिल्कुल तैयार हूं, बशर्ते कि आप इस बात का इत्मीनान करा दें कि आने वाले वक्ता कोई नई बात रखेंगे।

पं. गोविन्द मालवीय: क्या आप यह चाहते हैं कि हम जिन बातों के सम्बन्ध में यहां चर्चा करना चाहते हैं, उनका एक सारांश आप को लिखकर दे दिया करें?

***उपाध्यक्षः** शायद आपने मेरी बात समझी नहीं और वह जानबूझ कर।

मैंने यह कभी नहीं कहा है कि आप मुझे सारांश लिखकर दें। जो लोग यहां पहले से बैठे हैं और बातें सुन रहे हैं उन्हें मालूम है। आप आज आये हैं, इसलिए आपको नहीं मालूम है कि किन-किन बातों की चर्चा यहां...

***पं. गोविन्द मालवीयः** किन्तु मैं यहां की कार्यवाही का विवरण घर लेता गया था और वहां उसे पढ़ा है।

***उपाध्यक्षः** जिन सदस्यों के नाम मेरे पास आये हैं, वे स्वयं अगर मुझे यह इत्मीनान दिला दें कि वे कुछ नई बात कहेंगे, तो मैं इस पर विचार करने के लिए तैयार हूं।

***श्री हुसैन इमामः** (*बीच में कुछ बोलते हैं, जो रिपोर्टरों तक नही सुनाई पड़ता।*)

***श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): जब 40 सदस्य और अभी बाकी हैं तो एक दिन का समय बढ़ाने से भी काम नहीं पूरा होगा। तब तो आप पूरा एक सप्ताह का समय और दीजिए।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठीः** मेरा सुझाव है कि प्रस्तुत वाद-विवाद के लिए कुछ और दिन मिलने चाहिए।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है, मैं एक दिन और दूंगा। पर यह आशा मैं जरूर करता हूं कि इसका सदुपयोग किया जायेगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे के सम्बन्ध में कुछ बातें मैं जरूर कहूंगा, पर उसके पहले माननीय डा. अम्बेडकर का अभिनन्दन करूंगा। उनकी प्रशंसा करूंगा कि उन्होंने विधान के सिद्धांतों की व्याख्या इतनी योग्यता एवं बोधगम्य रूप से की है। फिर भी मुझे यह कहना होगा कि मेरे माननीय मित्र ने भारतीय ग्राम-समाज की आम तौर पर जो निन्दा की है, उससे मैं सहमत नहीं हूं। मैं उनके इस कथन से भी अपना प्रबल मतभेद प्रकट करता हूं कि ''भारतीय भूमि पर प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है''। भारतीय इतिहास के आदि काल से ही यहां की विभिन्न संस्थाओं

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

में प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। लोगों ने इन सिद्धान्तों को यहां तभी से अपना रखा है। प्रजातंत्र का आधुनिक स्वरूप यूरोपीय इतिहास में भी अपेक्षाकृत अप्राचीन ह—अभी हाल का ही है—क्योंकि इसकी मुख्य-मुख्य बातों का विकास फ्रांसीसी राज्यक्रांति और अमेरिका के स्वातंत्र्य-युद्ध के फलस्वरूप ही हुआ है। प्रजातंत्र के परमावश्यक और मूलभूत सिद्धान्त जिस रूप में कि आज वह समझे जाते हैं और उन पर अमल किया जा रहा है, इसके और बाद में जन्में हैं और गत महायुद्ध-काल में तथा उसकी समाप्ति के पश्चात् ही इनका प्रचलन बढ़ा है और इन्हें सारे संसार का समर्थन प्राप्त हुआ है।

मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मसौदा-समिति के कार्य के सम्बन्ध में जो कतिपय बातें कहीं हैं उनको देखते हुए, पहले इसके कि मैं प्रस्तुत विधान के बारे में अपना मत व्यक्त करूं, मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना मेरे लिए तथा सभा के लिए भी आवश्यक है। स्वास्थ्य के प्रतिकूल होते हुए भी मसौदा-समिति के सदस्य के नाते, इस मसौदे के छपने के पहले मैंने इसकी कई बैठकों में यथेष्ट सक्रिय भाग लिया और जब कभी बैठकों में मैं शामिल नहीं हो सकता था, तब भी मैंने अपने सुझाव और नोट अपने साथियों के विचारार्थ भेजे। मसौदो के छप जाने के बाद, स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से मैं समिति की किसी भी बैठक में भाग नहीं ले सका। इसलिए मसौदे में जो सुधार हुए हैं, उनके सुझाव का श्रेय मुझे नहीं है। यह याद रहना चाहिए कि कतिपय प्रश्नों के सम्बन्ध में विधान की मुख्य-मुख्य बातें विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार करके इस सभा ने ही तय कर दी थी। इसलिये विधान के इस मसौदे पर विचार करने में सभा अब दो वर्ष के बाद कोई नया काम नहीं करने जा रही है। जिन कई सदस्यों ने सभा द्वारा निश्चित इस विधान की कतिपय बातों की आलोचना की है, वे भी, जो निर्णय हो चुका है उसके दायित्व से अपने को किसी प्रकार मुक्त कर सकते हैं, इसमें मुझे शक है। विधान का संघीय ढांचा जिसमें केन्द्र को व्यापक शक्तियां दी गई हैं, समवर्ती सूची और उसमें रखे हुए विषय, प्रान्तीय विधान-मण्डलों की रचना, प्रधान तथा शासक के निर्वाचन की पद्धति, विधान-मण्डल एवं अधिशासी वर्ग के बीच का सम्बन्ध, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का निर्माण और उनकी शक्तियां, वे मूलाधिकार जिनके सम्बन्ध में नागरिकों को प्रत्याभूति प्राप्त रहेगी,

तथा विधान से सम्बन्ध रखने वाली अन्य कई बातें—ये सभी—इस सभा द्वारा ही निश्चित की गई हैं, अथवा इस सभा द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों द्वारा इन पर विचार किया गया है। जहां तक कि मसौदा-समिति ने इन अनुच्छेदों में इस सभा द्वारा तय किये हुए निर्णयों को स्थान दिया है, यह निर्णयों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराई जा सकती। हां, सभा को यह अधिकार है कि विशेष कारणों के आधार पर वह इन निर्णयों में परिवर्तन करे। विधान के उन प्रावधानों के बारे में, जिन पर कि सभा ने विचार नहीं किया है, उसे अधिकार है कि वह पहले के स्वीकृत प्रस्तावों से तथा इस विधान के साधारण स्वरूप से सामंजस्य रखते हुए इनके सम्बन्ध में कोई निर्णय करे।

विधान के सम्बन्ध में जो मुख्य-मुख्य आलोचनायें हुई हैं, उनको हम उन शीर्षकों में बांट सकते हैं।

आलोचना 1. प्रस्तुत विधान में विदेशी विधानों से ही बहुत कुछ लिया गया है और इसमें यहां का कुछ भी नहीं है। इस आलोचना में कोई खास जोर है यह देखते हुए कि संघीय पद्धति अपने आधुनिक रूप में अभी हाल में अमेरिका की क्रांति के बाद उत्पन्न हुई है और अमेरिका के इस उदाहरण के आधार पर ही बाद की संघीय राज्य-व्यवस्थाएं स्थापित हुई हैं। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न संघों में एक बड़ी प्रबल परिवारमूलक समरूपता है और प्रत्येक संघीय विधान अपने से पहले उत्पन्न विश्व के अन्य संघीय विधानों के आधार पर निर्मित हुआ तथा उनके अनुभवों और कार्य-प्रणाली से उसने लाभ उठाया। इस सम्बन्ध में यह भी याद रखना चाहिए कि सोवियत रूस का विधान भी संघीय-शासन के कई स्वीकृत सिद्धान्तों को लेकर बना है।

आलोचना 2. विभिन्न प्रादेशिक राज्यों को दुर्बल बनाकर केन्द्र को आवश्यकता से अधिक सशक्त बना दिया गया हैं आधुनिक जगत में औद्योगिक, व्यावसायिक एवं आर्थिक अवस्थाओं की जटिलता की दृष्टि से तथा रक्षा-सम्बन्धी विस्तृत आयोजनों की आवश्यकता की दृष्टि से प्रत्येक संघ में संघीय-शासन को सशक्त बनाने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति वर्तमान है। प्रस्तुत मसौदे ने अपने कई प्रावधानों में इस प्रवृत्ति का ध्यान रखा है और इसको सर्वोच्च न्यायालय पर नहीं छोड़ दिया है कि वह अपने अदालती भाष्य द्वारा केन्द्र को सशक्त बनाये। इस सम्बन्ध में

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

मैं यह बता दूं कि अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के विधान के व्यापार वाणिज्य सम्बन्धी धारा तथा सर्वसाधारण की भलाई सम्बन्धी धारा के बारे में व्यापक भाष्य देकर वस्तुतः राज्य के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो गया है, ताकि वह ऐसी स्थिति में रहे कि इन दो धाराओं के बल पर वह वहां की आर्थिक कार्रवाइयों को, पूंजीपति और मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध को, श्रमिकों को कितने घंटे काम करने होंगे—आदि सभी बातों को स्वयं नियंत्रित कर सके।

आलोचना 3. समवर्ती विषयों की सूची बड़ी विस्तृत है और इससे हो सकता है कि केन्द्र प्रांतीय क्षेत्रों का अतिक्रमण कर दे और विधान एकात्मक-शासन-पद्धति के अनुकूल हो जाये। समवर्ती सूची में रखे गये विभिन्न विषयों को पढ़ने से पता चलता है कि इनका सम्बन्ध प्रधानतः ऐसी बातों से है, जो समस्त देश में सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है। ब्रिटेन ने भारत में जिस प्रकार शासन-संचालन किया, उसके विरुद्ध हम चाहे जितनी आलोचना क्यों न करें, पर दण्ड और व्यवहार-प्रणाली-संहिता की रचना करके उन्होंने विधि में तथा विधि-प्रशासन में एकरूपता ला दी और यही उनके शासन का विशेष गुण रहा है। इसे सभी जानते हैं कि देशी रियासतों ने भी दण्ड और व्यवहार प्रणाली सम्बन्धी भारतीय संहिताओं (Indian Codes) को अपनाया है। बजाय इसके कि समवर्त्ती सूची को न रखा जाये अथवा समवर्त्ती विषयों में कांट-छांट की जाये, मैं तो यह कहूंगा कि इस सूची को भाग 3 में उल्लिखित रियासतों पर भी लागू किया जाये। समवर्त्ती सूची के रहने से विधान के संघीय स्वरूप में किसी प्रकार कमी नहीं आती, क्योंकि प्रान्तीय विषयों की एक स्वतंत्र सूची है।

आलोचना 4. हमारी ग्राम-पंचायतें भारत के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की विशेष अंग है, पर विधान में उन्हें यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया गया है। स्थानीय स्वशासन एवं अन्य मामलों के बारे में प्रांतीय और रियासती राज्यों की विधान-मण्डलों को विस्तृत शक्ति प्रदान की गई है, इसलिए प्रांतीय विधान-मण्डल उन कई प्रकार्यों को पूरा करने के लिए, जो प्रादेशिक राज्यों को सौंपे गये हैं, चाहे तो स्वयं शासन के लिए ग्राम-इकाइयों का निर्माण स्वयं कर सकती है।

आलोचना 5. मूलाधिकारों के सम्बन्ध में यह आलोचना की गई है कि उनको बहुत से प्रतिबंधों के द्वारा इतना जकड़ दिया गया है कि इनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता, यद्यपि विधान में इनके सम्बन्ध में प्रत्याभूति दी गई है। विधान में मूलाधिकारों की व्यवस्था करने में और उनके सम्बन्ध में प्रत्याभूति देने में सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि वैयक्तिक-स्वातंत्र्य तथा सामाजिक नियंत्रण के बीच मध्यवर्ती रेखा कहां खींची जाये। यह सच है कि स्वतंत्रता एक सुव्यवस्थित राज्य में ही फल-फूल सकती है जब कि राज्य की बुनियाद को कोई संकट न हो। अमेरिका के विधान में ये अधिकार बड़े व्यापक शब्दों में रखे गये हैं और इन पर लिखित रूप में कोई प्रतिबंध नहीं है। पर अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने दीर्घकालीन इतिहास में, कई अवसरों पर निर्णय देते हुए अनेक प्रतिबंधों को इन अधिकारों में स्वतः सन्निहित बतलाया। प्रस्तुत विधान ने, बजाय इसके कि इन आवश्यक प्रतिबंधों को लिखित रूप न देकर न्यायालय पर छोड़ दे कि वह अपने निर्णय द्वारा इनको मान्य बनाये, इन प्रतिबंधों और अपवादों को, जो किसी भी सुव्यवस्थित राज्य के लिए मान्य हैं, संक्षिप्त रूप में लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यदि हम इन प्रतिबंधों को लिपिबद्ध न करके न्यायालयों पर छोड़ देते हैं कि वह अपने न्यायाधीशों के व्यक्तिगत स्वभाव और बद्ध मूलधारणा के अनुसार निर्णय द्वारा आवश्यक प्रतिबंध लागू करें, या यों कहिये कि अदालती कानून द्वारा हम इन्हें लागू बनाये तो इसमें खतरा है।

अल्पसंख्यकों की समस्या के सम्बन्ध में सबकी सहमति से एक समझौता हो गया है और सभी वर्गों को यह सन्तोषप्रद है। इस विधान में तो सिर्फ इस समझौते को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है। जैसा कि आज सबेरे, हमारे प्रधान-मंत्री ने अपने ओजस्वी भाषण में बताया है, रस्मी या कानून द्वारा लादी गई एकता से तो कोई फायदा नहीं है, पर ऐसी कोई बात हमें नहीं करनी चाहिए, जिससे राष्ट्र स्थायी रूप से विभिन्न अल्पसंख्यकों में विभक्त बना रहे और उसका एकीकरण रुकता हो।

दूसरी आलोचना यह की गई है कि विधान में साधारण जनता की उपेक्षा की गयी है और इसमें समाजवादी रंग नहीं है। देश किसी विशेष आर्थिक अथवा सामाजिक

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

पद्धति को ही अपनाये, ऐसी बात विधान में नहीं है। बल्कि इसमें भावी व्यवस्थापिकाओं को, भावी संसदों को इस बात की काफी गुजांइश दी गई है कि वे किसी भी आर्थिक व्यवस्था को प्रचलित करें या कोई भी कानून बनायें, जिसे जनहित के लिए वे पसन्द करें। इस विधान में 'राज्य-नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्त' के नाम से जो विभिन्न अनुच्छेद रखे गये हैं उनका यही महत्त्व है, यही प्रयोजन है। जिस रूप में ये हैं, इनको अमली रूप दिलाने के लिए हम न्यायालय में अपील तो नहीं कर सकते हैं, फिर भी अनुच्छेद 29 के शब्दों में ये सिद्धान्त देश के शासन में मूलभूत है और विधि बनाने में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। यह कहना व्यर्थ है कि कोई भी उत्तरदायी शासन अथवा प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान-मण्डल इन सिद्धान्तों की उपेक्षा कर सकता है, या करेगा।

इस मसौदे में जो अर्थ सम्बन्धी प्रावधान हैं, उनकी तीव्र आलोचना मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है। संघीय शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आय के स्वतंत्र साधन या साधनों का होना तो अवश्य ही आवश्यक है, किन्तु फिर भी कई संघों में ऐसी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से वर्तमान है कि केन्द्रीय सरकार ही कर निर्धारित करने का काम करती है और इसमें वह, इन दो बातों के लिए, कि उस आमदनी से इकाइयों को हिस्सा मिले और केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करे, पर्याप्त प्रावधान रखने का सदा ध्यान रखती हैं। आखिर हम इस बात को तो नहीं भूला सकते कि कर देने वाला कोई राज्य का ही नागरिक या निगम है और कर निर्धारित करने वाला माध्यम कोई भी हो पर अगर उनकी संख्या बहुत हुई तो इससे नागरिकों को सुविधा न होगी। देश की वर्तमान अनिश्चित अवस्था में अपनी समस्त व्यवस्था को बदलना और एक नये ढंग से करों के सम्बन्ध में पुनर्व्यवस्था करना हमारे लिए सम्भव हो सकता है इसमें मुझे सन्देह है। यही कारण है कि इसमें इस आशय का प्रावधान रखा गया है कि दस वर्ष के बाद एक आर्थिक कमीशन बिठाया जाये। सम्भवत: मसौदे में यह त्रुटि रह गई है कि इसमें इस बात के लिए एक विशेष प्रावधान नहीं रखा गया है कि आर्थिक कमीशन के सुझावों के अनुसार आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में परिवर्तन किया जा सके और वैधानिक संशोधनों के लिए जो प्रक्रिया रखी गई है, उसका अनुगमन करना इसके लिए आवश्यक न हो।

संघवाद पर Prof. Wheare ने पुस्तक अभी हाल में लिखी है, उसमें कर-निर्धारण के सम्बन्ध में आप यह कहते हैं:

> ''संघीय पद्धति में आर्थिक साधनों के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कोई ऐसी बात निश्चित नहीं की जा सकती है कि अमुक साधन संघ को और अमुक साधन प्रादेशिक राज्यों को दिये जायें। इनके सम्बन्ध में तो परिवर्तित स्थितियों के अनुसार सुधार और पुनर्वितरण की व्यवस्था ही करनी होगी।''

फिर विधान में यह दोष बताया गया है कि यह बड़ा ही विस्तृत-वृहत् है और इसमें इतने अनुच्छेद है कि जितने दुनियां के और किसी भी विधान में नहीं हैं। यह आलोचना करने वाले आलोचक इस बात को भूल जाते हैं कि हम किसी क्रांति के बाद कोई नया विधान नहीं बना रहे हैं। वर्तमान शासन-व्यवस्था, जो इतने दिनों से काम करती आ रही है, आप नवीन विधान बनाने में सर्वथा उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरी बात जो आलोचक भूलते हैं, वह यह है कि इस विधान में सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायालयों की रचना और शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले विस्तृत प्रावधान हैं तथा प्रादेशिक राज्यों के विधान के सम्बन्ध में भी इसमें अनुच्छेद हैं, जो और विधानों में नहीं है। अगर हम इन सभी अनुच्छेदों को हटा सकते, तो हमारा विधान भी और सरल और संक्षिप्त हो जाता।

न्यायाधीश वर्ग के सम्बन्ध में भी विधान का यह विचार है कि प्रजातंत्र और विशेषत: संघीय विधान पर अमल करने के लिए एक स्वतंत्र न्यायाधीश-वर्ग की नितान्त आवश्यकता रहती है। प्रस्तुत विधान के अधीन अपने सर्वोच्च न्यायालय को इतनी व्यापक शक्तियां प्रदान की गई है, जितनी दुनियां की अन्य किसी संघीय व्यवस्था में किसी भी न्यायालय को नहीं दी गई हैं। देश के भविष्य-निर्माण के सम्बन्ध में साधारण जनता तथा उसकी शक्तियों पर पूरा भरोसा रखते हुए इस सभा ने विधान में प्रौढ़-मताधिकार की व्यवस्था की है और मेरी समझ से सभा का सर्वाधिक साहसपूर्ण कार्य यही रहा है। प्रौढ़ मताधिकार की इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ठीक-ठीक निर्वाचक सूची बनाने में तथा देश के भिन्न-भिन्न भागों में एक सी पद्धति बरतने में हम जितना भी प्रयत्नशील क्यों न हों, वह कम है। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम ने कल अपनी वक्तृता में जो सुझाव दिया था, उस पर विचार करने की, मैं सभा से सिफारिश करूंगा।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

और बहुत सी बातें है, जिनके सम्बन्ध में विधान के अन्तिम रूप से स्वीकृत होने के पहले सभा को बड़े ध्यान से, बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए नागरिकता का प्रश्न है, नवीन राज्यों के निर्माण का प्रश्न है, तथा उन रियासतों की स्थिति का प्रश्न है जो हमारे सरदार के योग्य नेतृत्व और अभिभावकत्व में गुटबन्द की गई हैं। इन सभी प्रश्नों पर सभा को बारीकी से विचार करना होगा। जिन रियासतों के प्रतिनिधि विधान-परिषद् में नहीं हैं, उनकी स्थिति के सम्बन्ध में भी इस विधान को अन्तिम रूप से पास करने के पहले विचार करना होगा, अन्यथा भारतीय संघ तथा इन रियासतों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में बड़े जटिल कानूनी प्रश्न खड़े हो सकते हैं।

वाद-विवाद के प्रसंग में दो और बातों की भी चर्चा की गई है। सद्यस्कृत्य स्थिति तथा अध्यादेश के सम्बन्ध में जो शक्तियां शासन को प्रदान की गई हैं, उनकी यहां आलोचना हुई है। इस सम्बन्ध में एक बात याद रखने की यह है कि प्रधान जिस किसी भी शक्ति का प्रयोग करेगा वह अपने दायित्व पर नहीं करेगा। यहां 'प्रधान' शब्द उस समस्त निकाय के लिए ही आया है जो विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा। चाहे अध्यादेश निकालना हो, या सद्यस्कृत्य स्थिति की शक्तियों का प्रयोग करना हो, इसके लिए मंत्रि-मण्डल ही सर्वजन-निर्वाचित विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा। यह भी याद रखना चाहिए कि गत वाद-विवाद में प्रतिनिधि लोग ही थे...

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास: जनरल): सभा-भवन में बहुत कोलाहल हो रहा है। भवन के उस कोने में शायद एक और वाद-विवाद चल रहा है।

***उपाध्यक्ष:** कृपया सभा में शान्ति रखिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं यहां यह बता दूं कि गत वाद-विवाद में प्रान्तों के प्रतिनिधि ही—मय अपने मंत्रियों के सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी अधिकारों के लिए औरों से ज्यादा चिन्तित थे। यह वही लोग थे जो शासन-संचालन के

अनुभव के आधार पर सद्यस्कृत्या सम्बन्धी अधिकारों को रखना चाहते थे। किस प्रकार सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी अधिकार के प्रावधान रखे गये हैं, उसमें कोई परिवर्तन आवश्यक है या नहीं, यह सब तो और बात है। अध्यादेश सम्बन्धी अधिकार का जहां तक सम्बन्ध है, स्वाभाविक अवस्था में अध्यादेश उसी समय चालू किया जायेगा, जब कि विधान-मण्डल का अधिवेशन न होता हो। अगर विधान-मण्डल बैठा होगा, तो मैं नहीं समझता कि बालिग-मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि अपने अधिकारों के लिए इस सभा के सदस्यों से हम चिन्तित होंगे, जो अपेक्षाकृत बहुत कम मतदाताओं द्वारा निर्वाचित हुए हैं।

विधान के मसौदे पर एक सरसरी निगाह डालने से सदस्यों को यह अवश्य मालूम हो जायेगा कि यह प्रजातंत्रीय शासन के ठोस सिद्धान्तों पर आधृत है, इसमें विकास और विस्तार की सभी आवश्यक बातें वर्तमान है और यह विश्व के सर्वाधिक समुन्नत प्रजातंत्रीय विधान के समकक्ष हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि विधान कुल मिला कर वैसा ही होगा जैसा हम उसे बनायेंगे। इसका ज्वलंत उदारहण आप पायेंगे अमेरिका के विधान में, जिसे कि वहां की विभिन्न रियासतों ने जब अन्तिम रूप से स्वीकार किया था, तो उनमें इसके लिए जरा भी उत्साह और उल्लास नहीं था, किन्तु काल की कसौटी पर यह खरा उतरा है और शेष प्रजांतत्रीय विश्व इसे एक आदर्श विधान मानता है।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने कृपा कर अपने भाषण में भारतीय रियासतों का उल्लेख किया और यह अपील कि जहां तक इकाइयों—प्रादेशिक राज्यों—का सम्बन्ध है, विधान की रूपरेखा में रियासतों और प्रान्तों के बीच कोई भेदभाव न रखना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसा विचार व्यक्त किया गया और शायद यह पहली बार ऐसी राय दी गई है। अब तक हर रियासत को अपनी विधान-सभा बनाने का अधिकार था और सम्मिलित रियासतों के संघों को भी अपने विधान बनाने के लिए विधान-सभा बुलाने का अधिकार था। हममें से कई लोग इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि रियासतों में तथा रियासती संघों में विधान-सभा बुलाई जायेंगी; उन्हें क्या अपना विधान बनाने की स्वतंत्रता है? क्या वे भारतीय विधान के अनुसार वैध होंगी? मैं आपके सामने कुछ सुझाव

[श्री के. हनुमन्थय्या]

रखना चाहता हूं जिनसे इस सम्बन्ध में हम अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर सकते हैं।

उपाध्यक्ष महोदय, मैसूर की विधान-सभा ने प्रायः आधा काम पूरा कर लिया है और यह एक मसौदा-समिति नियुक्त करने ही जा रही थी कि उसकी समझ में यह बात आई कि रियासतों की अन्य सभाओं के मत और इस महती सभा का मत सम्भवतः अन्तिम रूप से विधान तैयार करने में बहुमूल्य सिद्ध हो। यही सोचकर उसने पांच सदस्यों की एक समिति नियुक्त की है, जो अन्य रियासती विधान-सभाओं से और अगर सम्भव हुआ तो इस सभा से भी सम्पर्क स्थापित करेगी। समिति के सदस्यों के नाम भी घोषित हो चुके हैं। आशा है कि रियासतों के आये हुए प्रतिनिधि यहां सरकारी या गैर-सरकारी तौर पर अपनी अलग बैठक करके एक ऐसी नीति तय कर सकेंगे, जो इस सभा के लिए और इस देश के लिए मान्य होगी। विभिन्न रियासतों में या रियासती संघों में जो विधान-सभाएं होंगी, वह अवश्य ही, उस राय का स्वागत करेंगी, जो यहां रियासतों के प्रतिनिधि उन्हें देंगे। किन्तु इसमें कुछ रुकावटें हैं, जिन्हें मैं बता देना चाहता हूं।

अंग्रेजी राज में भी, जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान्, रियासतों को प्रान्तों से कुछ अधिक मात्रा में स्वायत्त-शासन का अधिकार प्राप्त था और मैं कह सकता हूं कि उसका दुरुपयोग कभी नहीं हुआ। हर रियासत को उसको स्वशासन सम्बन्धी अधिकार कितनी भी मात्रा में क्यों न प्राप्त रहा हो, भारत के हित का उन सबके मन में ध्यान रहा है और सबने तदनुसार कार्य किया है। हम लोगों को, अर्थात् रियासती जनता को ऐसा ख्याल है कि विधान का जैसा वर्तमान स्वरूप है, उसमें शायद संधान की इकाइयों को, अपने कार्यों को सुचारू रूप से निपुणतापूर्वक चलाने का पर्याप्त स्वातंत्र्य न मिलें। मसौदे को, जैसा कि इसका अब स्वरूप है—डा. अम्बेडकर क्षमा करेंगे, मेरा उनसे यहां, मतैक्य नहीं है—आवश्यकता से अधिक केन्द्रोन्मुखी बना दिया गया है। यह तो भारतीय राज्य-संघ को संघानीय न बनाकर एकात्मक बना देता है। केन्द्र को सशक्त बनाने की चिन्ता में इन लोगों ने केन्द्र को विधि-निर्माण की तथा अर्थ सम्बन्धी बहुत अधिक शक्तियां दे दी हैं और प्रान्तों एवं रियासतों के साथ ऐसा व्यवहार किया है, मानो वे प्रान्त के मण्डल (जिला)

मात्र हैं। मुझे सन्देह है कि इस प्रवृत्ति से उन्हें वह बात नहीं प्राप्त होगी, जिसे यह केन्द्र की शक्ति कहते हैं। मैं उन सबको, जिनका विधान-निर्माण में हाथ है, यह बता देना चाहता हूं कि केन्द्रीय कार्यालय में केवल फाइलों का ढेर लगे रहने से ही केन्द्र को शक्ति नहीं प्राप्त हो जायेगी। केन्द्र की शक्ति—अगर मैं इसे सही-सही समझता हूं—इसमें है कि उसके पास बलशाली सेना हो, मजबूत जहाजी और हवाई बेड़ा हो, इन सबके लिए यथेष्ट धन हो और न कि इसमें वह प्रान्तों या रियासतों के सामने अपना भिक्षा पात्र लेकर खड़ा हो। बजाय ऐसा करने के यदि केन्द्र बहुत सी शक्तियां लेता है और अपने विधि-निर्माण के क्षेत्र को बढ़ाता जाता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्तों में प्रेरणात्मक शक्ति नष्ट हो जायेगी और वह आप से आप चलने वाले यंत्र मात्र रह जायेंगे। मैंने बड़े-बड़े विधान-विशारदों की पुस्तकें पढ़ रखी हैं। उनके अनुसार, किसी देश की स्वतंत्रता को परखने की मान्य कसौटी यह देखना है कि उसकी इकाइयों को और स्थानीय निकायों को कितनी स्वतंत्रता, कितना स्वशासनाधिकार प्राप्त है। केन्द्र की शक्ति को भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न बातों में समझते हैं और हमारी मसौदा-समिति केन्द्र की शक्ति इसी में समझती है कि केन्द्रीय कार्यालय (Imperial Secretariat) में कागजों का—फाइलों का—सदा ढेर लगा रहे। सभी इकाइयों के लिए एक सा विधान हो, इसे मानने में रियासतों के सामने यह एक बड़ी बाधा है। पहले इसके कि रियासतें प्रांतों के स्तर पर आना स्वीकार करें—मैं यहां प्रांतों और रियासतों दोनों के लिए ही कह रहा हूं—इन्हें इस बात का पक्का विश्वास दिलाना होगा कि उन्हें स्वायत्त-शासन का वास्तविक अधिकार मिलेगा; ऐसा स्वायत्त-शासन नहीं दिया जायेगा, जिसमें कुल मिलाकर प्रादेशिक-राज्यों के हित को क्षति पहुंचती हो, बल्कि उन्हें यथेष्ट अधिकार और दायित्व मिलेंगे, जिससे कि सुचारू रूप से निपुणतापूर्वक वे अपना प्रबंध कर सकें। हम भूल गये हैं कि हम यहां राष्ट्रपिता शब्द किसके लिए बार-बार प्रयुक्त कर रहे हैं। हमारे राष्ट्र-पिता ने तो यह कहा था कि हमारा विधान पिरामिड के आकार का होना चाहिए, जिसमें केन्द्र को शीर्ष-स्थान प्राप्त हो। पर हमारा प्रस्तुत विधान तो इससे बिल्कुल उलटा है। रियासती जनता के मन में यह डर है कि केन्द्र बहुत अधिक शक्ति स्वयं ले रहा है।

[श्री के. हनुमन्थय्या]

अब और ऐसी कोई बात नहीं रह गई है जिस पर काफी प्रकाश न डाला गया हो। हां, एक बात मैं कहूंगा और आशा है, मैं गलत न समझा जाऊंगा। स्टेट मिनिस्ट्री ने रियासती जनता को जितना असन्तोष पहुंचाया है, शायद उतना पूर्ववर्ती राजनैतिक विभाग (Political Department) ने भी नहीं पहुंचाया है। मैंने यहां सभा में रियासत के लोगों को यह कहते सुना है कि स्टेट मिनिस्ट्री ने रियासती जनता की राय पर ध्यान ही नहीं दिया। उसे तो राजाओं की तथा उनके दीवानों की ज्यादा फिक्र है और जनता की कोई पूछ ही नही है। ऐसा मालूम होता है, मानो राजाओं को और दीवानों को सभी चीजें दी जा रही है, पर जनता को कुछ भी नहीं। रियासतों को अगर आज मिलाकर संघ बनाये जा रहे हैं, तो यह इस कारण नहीं हो रहा है कि राजा या दीवान ऐसा चाहते थे और उन्होंने उसके लिए प्रयास किया, बल्कि यह इसलिए हो रहा है कि रियासती जनता ने, जिसने आज़ादी के आन्दोलन में भाग लिया, आज ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिसमें राजाओं को ऐसा करने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह गया है। वस्तुतः यह बड़े दुख की बात है कि राजाओं और दीवानों को खुश रखने की फिक्र में हमने जनता को भुला दिया। स्टेट मिनिस्ट्री की इस भावना को हमें यथा शक्ति ठीक करना होगा, जिससे रियासतों की जनता वस्तुतः ऐसा समझ सके कि उनको भी शेष भारत का दर्जा प्राप्त है और उनका भाग्य सुरक्षित है।

और फिर, श्रीमान्, कर-निर्धारण सम्बन्धी मामले में रियासतों को प्रान्तों से अधिक स्वातंत्र्य प्राप्त हैं। हमने उन्हें तीन विषय दे रखे हैं और इन तीनों के सम्बन्ध में अपना खर्च पूरा करने के लिए उनको काफी रकम मिल सकती है। बहुत सी रियासतें इसी समय आय-कर इकट्ठा करती हैं। अगर यह कर केन्द्र को जाये, तो इसमें हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं है, पर आगम के अन्य करमूलक साधन रियासतों को ही दिये जाने चाहिए, ताकि वह अपना खर्च पूरा कर सकें। सही बात तो यह है कि बार-बार यह शिकायत की जा रही है कि रियासतों में, जिनका कि विलीनीकरण हो गया है, आज जनता को इतनी भी अच्छी सरकार नहीं मिली है, जितनी कि राजाओं के जमाने में वहां थी। वह राय है उन लोगों की, जो जनता के माने हुए प्रतिनिधि हैं। यह बहुत ही दुखद है। हम तो यह आशा लगाये बैठे थे कि राजाओं के हटने पर जब रियासतें प्रान्तों में मिल जायेंगी, तो रियासत की जनता को पहले से अच्छी सुविधाएं, अच्छे अवसर मिलेंगे। रियासतों

से आये प्रतिनिधि आज ऐसे दुखद विचार व्यक्त कर रहे हैं उडीसा की रियासतों में तथा दक्षिण की रियासतों में कांग्रेस सरकार के अधीन जो शासन चल रहा है, वह उतना अच्छा नहीं है जितना कि पहले राजाओं के अधीन वहां का शासन था। मैं यहां केवल मैसूर के प्रतिनिधि की हैसियत से ही नहीं बोल रहा हूं, बल्कि अन्य रियासतों के प्रतिनिधि से भी इस संबंध में बातचीत का मौका मिला है, और यह उनकी राय है।

दिल्ली, श्रीमान्, आज हमारी राजधानी हैं हम में से बहुत से सदस्य, जो दक्षिणात्य प्रदेश, बंगाल तथा देश के अन्य भाग से आये हैं, ऐसा समझते हैं कि दिल्ली कई कारणों से भारत की राजधानी के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक कुख्यात अभिशापग्रस्त नगर हो गया है। यहां जो भी राज्य रहे, उन सबको इस नगरी ने दफना दिया और उनकी कब्रें आज तक इसके इर्द-गिर्द चारों और वर्तमान है। हम नहीं चाहते कि हमारे अपने राज्य का भी यही हाल हो। इस भावुकता प्रधान कारण के आधार पर ही मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं। यहां केवल दो महीने छोड़कर बाकी साल भर हमें उग्र जलवायु का—कठोर शीत या भीषण ताप का—सामना करना पड़ता है और कोई भी मेहनत का काम करना यहां असम्भव है। देश की राजधानी देश के मध्य भाग में अवस्थित होनी चाहिए और ऐसा होना ही उचित है। हमें अपनी राजधानी को मध्यप्रान्त में या अन्यत्र कहीं उसके आस-पास रखना चाहिए।

***माननीय श्री बी.जी. खेरः** बम्बई इसके लिए और अच्छा होगा।

***श्री के. हनुमन्थय्याः** इस सम्बन्ध में मैंने अन्य कई साथियों की राय ली है और मेरा कहना है कि मध्य प्रान्त को लोग अधिक पसन्द करते हैं। मध्य प्रान्त में आप बेतुल को ही राजधानी बना सकते हैं। इस सम्बन्ध में लोग यह तर्क रखते हैं कि हमने दिल्ली के निर्माण में इतनी लम्बी रकम खर्च कर डाली और अब अन्यत्र राजधानी बनाने में फिर और खर्च करें, इसमें क्या लाभ है? दिल्ली में हम अभी भी अपने कई केन्द्रीय दफ्तर रख सकते हैं। पूर्वी पंजाब अपनी राजधानी बनाने की फिक्र में लगा हुआ है और अम्बाला को वहां वाले अपनी राजधानी बनाना चाहते हैं। हम यहां की आधी इमारतें पंजाब सरकार को देकर उनसे इसके लिए रुपया ले सकते हैं। मैं देखता हूं कि विभाजन के बाद

[श्री के. हनुमन्थय्या]

पंजाब अपना व्यय-निर्वाह नहीं कर पा रहा है और हमें उसको आर्थिक सहायता देने की जरूरत पड़ेगी तभी वह अपने पांव पर खड़ा हो सकेगा। इस दृष्टिकोण से तथा जनता का मत देखते हुए, देश और उसके भविष्य के लिए यह अच्छा है कि दिल्ली भारत की राजधानी न रहे। हमें मध्य प्रान्त में नई राजधानी बनानी चाहिए। आपने मुझे मत व्यक्त करने का समय दिया, इसके लिए, श्रीमान्, मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** पं. गोविन्द मालवीय।

***पं. गोविन्द मालवीयः** वाद-विवाद कल तक चालू रहेगा। ऐसी स्थिति में क्या आप मुझे यह सुविधा दे सकेंगे कि मैं कल बोलूं?

***उपाध्यक्षः** मैं चाहता हूं कि आप आज ही बोलें।

***पं. गोविन्द मालवीयः** उपाध्यक्ष महोदय, पहले इसके कि मैं और कोई बात कहूं मैं सदस्यों का, मसौदा-समिति का, तथा उसके योग्य प्रतिभा सम्पन्न अध्यक्ष, मित्र डा. अम्बेडकर का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं कि उन्होंने हमें यह विधान देकर बड़ा ही सुन्दर कार्य किया है। विधान-निर्माण की कठिन समस्या का उन्हें समाधान करना था और उन्होंने सफलतापूर्वक अपना काम सम्पादित किया है। मसौदे में बहुत सी ऐसी बातें हो सकती हैं, जिनके सम्बन्ध में हम किंचित परिवर्तन चाहते हों, पर ऐसा तो सभी बातों के साथ होता ही है।

मैंने आपसे समय देने के लिए जो अनुरोध किया, वह इसलिए नहीं कि मैं सभा के सामने मसौदे की उन सभी बातों को रखूं, जो मेरी समझ से, अगर कुछ ही भिन्न रूप में होती तो अच्छा था। ऐसी बातों में मतभेद होना स्वाभाविक है पर इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, अगर कुल मिला कर चीज ठीक है। उदाहरण के लिए विधान के मसौदे में कई ऐसी बातें हैं, जो अगर कुछ भिन्न रूप में होती तो मुझे ज्यादा पसन्द आतीं। प्रधान का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान द्वारा एकल संक्राम्य मत से होगा। मुझे यह व्यवस्था पसन्द नहीं हैं अगर सीधे बहुमत से प्रधान का निर्वाचन होता, तो मुझे ज्यादा पसन्द था। अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति सम्भवतः बहुत हानिकारक है, पर मैं आवश्यकता से अधिक एक मिनट भी आपका समय नहीं लेना चाहता। मैंने केवल प्रसंगात् यह उल्लेख किया है।

ऊपर वाली सभा के लिए 15 सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार प्रधान को दिया गया है। यदि वह व्यवस्था न रखी गई होती, तो मुझ प्रसन्नता होती। संघीय न्याय-मण्डल के लिए न्यायधीशों की कम से कम क्या संख्या होगी, यह तो निश्चित कर दिया गया है, पर अधिक से अधिक उनकी क्या संख्या होगी यह निश्चित नहीं किया गया है। मुझे खेद है, श्रीमान्, कि मैं आज ही आया हूं और मुझे मालूम नहीं था कि वह वाद-विवाद चल रहा है। मैं अपने कागजात भी नहीं लाया हूं, इसलिए मैं अभी बोलने के लिए तैयार नहीं था। मैं उन्हीं चन्द बातों की चर्चा करूंगा जो मुझे खटकती हैं। न्यायाधीशों की अल्पमत संख्या तो निश्चित कर दी गई है, पर अधिकतम संख्या नहीं निश्चित की गयी है। ऐसी परिस्थिति आ सकती है, जब अधिशासी-मण्डल यानी भारत सरकार इस व्यवस्था का दुरुपयोग कर अनेक नवीन न्यायाधीशों की नियुक्ति कर ले और पहले वाले अनुकूल न्यायाधीशों की उपेक्षा कर अपना काम बना ले। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा होगा ही, किन्तु जब हम देश के भावी शासन के लिए विधान बना रहे हैं, तो हम जितनी ही सावधानी बरतें, अच्छा है। इसलिए संघीय न्याय-मण्डल के न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या निश्चित कर देना मेरी समझ से ज्यादा अच्छा होगा।

विधान में ऐसी और भी बहुत सी बातें हैं जो जैसा कि मैंने कहा है, अगर कुछ भिन्न रूप में होती तो मुझे और प्रसन्नता होती। पर प्रधान बात यह नहीं है जिसके लिए मैं सभा का समय ले रहा हूं। विशेष रूप से जो बात मैं यहां कहना चाहता हूं, वह है विधान की प्रस्तावना के सम्बन्ध में। हम अपने देश के प्रति, अपने समस्त इतिहास के प्रति, अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति तथा भारतीय आदर्श के प्रति कर्त्तव्यपालन में असफल होंगे, यदि विधान के प्रारूप में दी हुई इस कुरूपा प्रस्तावना को अपनाते हैं। मैं चाहूंगा कि इसमें जगन्नियन्ता का, परमात्मा का उल्लेख हो जो समस्त विश्व की गतिविधि संचालित करता है। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि दुनियां के अन्य कई विधानों में ऐसा किया गया है। इस कारण से मैं यह सुझाव नहीं रख रहा हूं। जैसा कि मैंने कहा है, इस देश की परम्परा, इसकी समस्त संस्कृति की यह मांग है कि प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख हो। इस सम्बन्ध में मैं एक ही बात कहूंगा, क्योंकि सभा का समय

[पं. गोविन्द मालवीय]

मैं नहीं, बर्बाद करना चाहता और यथासम्भव संक्षेप में मैं अपनी बात आपके सामने रखूंगा। हम यहां भारतीय जनता के प्रतिनिधि के रूप में समवेत हुए हैं। आज देश में, यदि इस सम्बन्ध में जनता की राय जानने के लिए किसी उपाय का अवलम्बन करें, तो मुझे निश्चय है कि 90 प्रतिशत से अधिक निवासी—अगर ज्यादा नहीं—ईश्वर में प्रबल विश्वास रखने वाले ही मिलेंगे। वह यही चाहेंगे कि प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख अवश्य हो। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि अगर हममें से कुछ लोग अथवा सभी ईश्वर में विश्वास न रखते हों, तो भी—मैं 'अगर' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं, मैं यह नहीं कहता कि सभी नास्तिक हैं, पर अगर सभी हों भी तो—मैं ससम्मान कहूंगा कि हम अपने देश के प्रति, देशवासियों के प्रति, जिनके कि हम प्रतिनिधि हैं, कर्त्तव्य पालन में चूकेंगे यदि हम प्रस्तावना में परमात्मा का उल्लेख नहीं करते हैं, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा है, यहां के 90 प्रतिशत से अधिक निवासी ईश्वर में विश्वास करते हैं और प्रस्तावना में भगवान का उल्लेख वह चाहेंगे। हमारी संस्कृति की, हमारे दर्शन की, हमारे सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि हमने सहिष्णुता के साथ अन्य विचारधाराओं को, बिना किसी बाधा के समाज में स्थान दिया है। नास्तिक को, शून्यवादी को—सबको—हमने समाज में स्थान दिया पर कुल मिलाकर हममें, समस्त राष्ट्र में सदा प्रबल रूप से ईश्वर में प्रगाढ़ विश्वास बना रहा है। अपने सुदीर्घ और वैभवशाली इतिहास के प्रारम्भ से ही भारतवासियों में एक परमव्यापक, सक्रिय एवं सजीव विश्वास ईश्वर में उसकी भक्ति में रहा है और यही विश्वास सदा हम लोगों के जीवन का मौलिक आधार, परमावश्यक तत्त्व रहा है। महात्मा गांधी का जीवन, हमारे राष्ट्र निर्माता का जीवन उसका एक सजीव उदाहरण है। उन्होंने जीवन भर ईश्वर-विश्वास का ही उपदेश दिया। मरते समय भी उनके मुख पर भगवान का नाम था। प्रतिदिन वह प्रार्थना करते थे और रामधुन का गीत गाते थे। मैं कहूंगा कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों और सभाओं में, विश्व में सर्वत्र भारत ने जो अपना प्रबल प्रभाव डाला है, हमारे प्रधान मंत्री ने अभी उस सम्मेलन में, जहां ब्रिटिश कामनवेल्थ के सभी देशों के प्रतिनिधि उपस्थित थे, भारत का जो प्रभाव स्थापित किया है, इसका प्रधान कारण हमारे देश की दार्शनिक पृष्ठभूमि ही है, जो आज इस समुज्ज्वल और सुखद नीति के रूप में सामने आई है, जिसका हमारे प्रिय प्रधानमंत्री प्रतिपादन करते हैं और

जिसका हमने महात्मा गांधी के नेतृत्व में सदा अनुगमन किया है। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो हम अपने देश के प्रति, अपने देशवासियों के प्रति अन्याय करेंगे। इसलिए आशा है, मेरे मित्र डा. अम्बेडकर तथा अन्य बन्धु इस पर विचार करेंगे और मेरी समझ से जो दोष है जो बात छूट गयी है उसको ठीक करेंगे।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि विधान में हमें देश का नाम रखना चाहिए। मैं तो ऐसे विधान की कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें हमारे देश को 'इंडिया' कहा गया हो। मैं इसके लिए कोई विशेष नाम आपके सामने नहीं रखूंगा। जो भी नाम सभा को अच्छा लगे, रखा जाये, मुझे उससे सन्तोष है। किन्तु मेरा कहना यह है कि अपने देश को विधान में 'इंडिया' नाम देना ठीक नहीं है। अगर आवश्यक हो तो कुछ समय के लिए अपने दिए हुए नाम के बाद ब्रैकेट में 'इंडिया' शब्द भी हम रख सकते हैं या ''(Known in English as India)'' यह रख सकते हैं जैसा कि आयरलैंड वालों ने किया है। किन्तु अपने देश के लिए 'इंडिया' नाम रखना तो बड़ा हास्यास्पद मालूम पड़ता है। यह हुई दूसरी बात, जो मैं सभा के विचारार्थ कहना चाहता था।

तीसरी बात, जिसे मैं यहा रखना चाहता हूं, वह कुछ नाजुक बात है आशा है कोई भी मित्र मुझे गलत न समझेंगे। अपने भाषण में डा. अम्बेडकर ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न की चर्चा की है। आपने विभाजन के सम्बन्ध में आयरलैंड की विधान विषयक कार्यवाहियों का उल्लेख किया है। किन्तु वह यह भूल जाते हैं कि ''भाड़ में जायें आपके संरक्षण; मैं आपके द्वारा शासित होना ही नहीं चाहता''। कहने वाला कासग्रेव नामक व्यक्ति अगर वहां था, तो उसकी पीठ पर सारी अंग्रेजी हुकूमत का हाथ था। हमारे यहां तो अब ऐसा कोई नहीं है। मुझे निश्चय है कि अब कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग वस्तुत: यह न चाहेगा कि उसका एक पृथक राज्य हो। इस सम्बन्ध में मुझे एक बात कहनी है। मैं यह नहीं कहता कि हम अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्था न रखें। अवश्य ही हमें उनके संरक्षण के लिये हर सम्भव आश्वासन उन्हें देना चाहिए, न केवल शब्दों द्वारा बल्कि अपने कार्यों द्वारा। पर मैं कहना यह चाहता हूं, श्रीमान्, कि स्थान-संरक्षण के सम्बन्ध

[पं. गोविन्द मालवीय]

में जो अनुच्छेद विधान में है, उसमें एक और धारा जोड़ी जानी चाहिए। मैं इस अनुच्छेद को यों ही रहने देना चाहता हूं, उसमें कोई कमी नहीं करना चाहता। अल्पसंख्यकों को संरक्षण अवश्य दिया जाये। इस सम्बन्ध में अभी जो खण्ड है, उसमें कहा गया है कि दस वर्ष के बाद संरक्षण की व्यवस्था स्वत: समाप्त हो जायेगी, यदि अन्यथा निर्णय न हुआ। मेरा कहना इतना ही है कि अगर अल्पसंख्यक अथवा उनका कोई वर्ग, दस वर्ष के पहले ही खुद यह चाहे कि उसके संरक्षण या विशेष प्रतिनिधान की व्यवस्था हटा ली जाये, तो इस अनुच्छेद के कारण उसमें कोई बाधा न पड़नी चाहिए। जैसा मैंने कहा है, आशा है लोग मुझे गलत न समझेंगे। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि जो संरक्षण उनको दिये गये हैं, उनमें रंच मात्र भी कमी की जाये। मेरा कहना इतना ही है कि हो सकता है कि अल्पसंख्यक स्वयं ही इस व्यवस्था को उठा देने का फैसला करें और हमें इस सम्भावना को ध्यान में रखना चाहिए। आशा है, सभा इस सम्बन्ध में अनुकूल व्यवस्था करेगी।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि विधान के अन्त में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिए, जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि में विधान को हमेशा दुहराया जाये। मैं जानता हूं, विधान में संशोधन करने के लिए खूब सोच-विचार से बनाया हुआ एक प्रावधान रखा गया है। फिर भी मैं ऐसा समझता हूं कि इस प्रावधान के अनुसार चलना आसान नहीं है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि विधान सम्बन्धी संशोधन के लिए किसी सरल प्रावधान में मैं विश्वास नहीं करता। बल्कि मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि विधान में संशोधन करने के लिए हमें एक कठोर प्रावधान ही रखना चाहिए, किन्तु मेरी समझ से विधान में एक ऐसा प्रावधान होना ही चाहिए, जिससे कुछ वर्षों के अनुभव के बाद केवल एक बार विधान का पुनरावलोकन किया जा सके और उसके फलस्वरूप जो परिवर्तन सुझाये जायें उनके सम्बन्ध में साधारण बहुमत द्वारा निर्णय हो जाये। केवल एक बार के पुनरावलोकन के लिए ही प्रावधान होना चाहिए। इस सुझाव की विस्तार की बातों के सम्बन्ध में मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं है। तीन वर्ष बाद, पांच वर्ष बाद या सात वर्ष के बाद, चाहे जब आप पुनरावलोकन करें। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि विधान

में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिए, जिससे तीन या पांच वर्षों के अनुभव के बाद विधान की एक आवृत्ति हो ही और तब केन्द्र तथा प्रान्तों के लोगों का जो अनुभव है, उसके आधार पर जो भी संशोधन आवश्यक हो, स्वीकार किये जायें। इसके बाद मेरा अपना भी यही मत है कि विधान में संशोधन करने के लिए जो प्रावधान हम रखें, वह अवश्य यथाशक्य कठिन ही हों।

मुझे यह चिन्ता है कि कहीं आप घंटी बजाकर मुझे बैठने का आदेश न दे दें। इसलिए अब मैं अपनी बात समाप्त करता हूं। यही कई सुझाव में सभा के सामने रखना चाहता था और इसके लिये आपने मुझे अवसर किया एतदर्थ मैं आपका कृतज्ञ हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, बैठक के स्थगित होने के पहले क्या मैं यह जान सकता हूं कि विचाराधीन प्रस्ताव के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से क्या कार्यक्रम रहेगा?

***उपाध्यक्ष:** कल के बाद कोई यह कहने का दावा न कर सकेगा कि विचारार्थ और समय मिलना चाहिए।

सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

तत्पश्चात् सभा मंगलवार, ता. 9 नवम्बर, सन् 1948 ई.
के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।